ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी

दयाल मुनि आर्य

ऋषि दयानन्द
की
प्रारम्भिक जीवनी

दयाल मुनि आर्य
आयुर्वेदाचार्य, आर्युर्वेद चूड़ामणि, डी० लिट्० (आयुर्वेद)

सम्पादक
भावेश मेरजा

प्रकाशक
डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार
सत्यार्थ प्रकाशन न्यास,
1425, सैक्टर-13 अर्बन एस्टेट,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा), 136 118

ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी

लेखक : दयाल मुनि आर्य

सम्पादक : भावेश मेरजा

प्रकाशक : डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार
सत्यार्थ प्रकाशन न्यास,
1425, सैक्टर-13 अर्बन एस्टेट,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
136 118

संस्करण : प्रथम
सृष्टि संवत् : 1960853115
दयानन्द जन्माब्द : 190
विक्रम संवत् : 2072
ईस्वी सन् : 2015

मुद्रक : क्रेज़ी ऑफ़सेट प्रिन्टर्स, कुरुक्षेत्र

सम्पादकीय

श्री दयाल मुनि की आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य करते हुए मैंने उनकी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति को सम्पादित किया है । इस कार्य में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इस बात का निर्णय तो विज्ञ पाठक वर्ग ही करेगा । हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि यह कार्य मैंने पूरे मनोयोग, उत्साह और सावधानी के साथ किया है ।

दयाल मुनि से मेरा पुराना परिचय है । उनके हृदय में ऋषि दयानन्द एवं उनके ग्रन्थों के प्रति दृढ निष्ठा है । इस ग्रन्थ में उन्होंने ऋषि दयानन्द के प्रारम्भिक जीवन सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण एवं विवादास्पद विषयों पर अपनी निर्णयात्मक शोधपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है । ऋषि दयानन्द के इतिहास के अध्येताओं को एवं भावी शोधकर्ताओं को इस ग्रन्थ से अवश्य दिशाबोध प्राप्त होगा ।

लेखक अपने गम्भीर शोध कार्य के परिणाम स्वरूप क्या क्या निष्कर्ष निकालता है, यह तो महत्त्वपूर्ण होता ही है । मगर पाठकों को इससे भी विशेष बात इस ग्रन्थ में यह देखने को मिलेगी कि इस प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में शोघ कार्य करने में शोधकर्ता विद्वान् उपलब्ध विभिन्न उपादान सामग्री का विभिन्न दृष्टिकोणों से सम्यक् प्रयोग करते हुए किस ढंग से निर्णय के तट पर पहुँचने में सफल हो पाता है ।

दयाल मुनि ने ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी से भिन्न दो अन्य विषय एवं ऋषि दयानन्द की बहिन प्रेमबाई के प्रपौत्र पोपटलाल के जीवन परिचय पर भी इसमें लिखा है, जिसका

समावेश इस ग्रन्थ के प्रथम तीन परिशिष्ट में किया है। शेष चार परिशिष्ट हमने तैयार किए हैं।

1926 ई० में टंकारा में आयोजित जन्म शताब्दी महोत्सव में पोपटलाल तथा ऋषि के बालसखा इब्राहीम के द्वारा दिए गए निर्णायक वक्तव्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित रखने की दृष्टि से इस ग्रन्थ में परिशिष्ट-4 के रूप में दिए गए हैं। पोपटलाल द्वारा प्रस्तुत किए गए मूल गुजराती में लिखित कथन का हमने देवनागरी लिप्यन्तरण कर साथ में उसका हिन्दी अनुवाद भी कर दिया है। मौरवी (शुद्ध नाम मोरबी) नरेशों के ऋषि दयानन्द सम्बन्धी वक्तव्यों को हमने परिशिष्ट-5 में विवेचना पूर्वक संकलित किया हैं। ऋषि दयानन्द ने राजकोट यात्रा के दिनों में अपनी जन्मभूमि टंकारा की फेरी की थी या नहीं - इस पर परिशिष्ट-6 में विवेचना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थों का उल्लेख वैसे तो ग्रन्थ में यथास्थान किया ही है, फिर भी अन्तिम परिशिष्ट में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गई है। पूरे ग्रन्थ में हमने आवश्यकतानुसार कई सम्पादकीय पाद-टिप्पणियाँ भी दी हैं।

जैसे श्री दयाल मुनि टंकारा के ही निवासी हैं, वैसे मेरा भी गाँव थोराला (थोराळा) मौरवी-टंकारा से केवल 15-18 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अतः इस ग्रन्थ को सम्पादित कर मैंने भी अपना कर्तव्य पालन ही किया है, ऐसा हार्दिक सन्तोष अनुभव करता हूँ।

8-17 टाउनशिप, **भावेश मेरजा**
पो० नर्मदानगर, भरुच (गुजरात)
392015

प्राक्कथन

ऋषि निर्वाण शताब्दी के समय मैं ऋषि उद्यान अजमेर में एक आर्य सज्जन के पास बैठे उनसे बातें कर रहा था। उन्होंने डॉ० भवानीलाल भारतीय लिखित 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' में वर्णित कुछ विषयों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। वहाँ से आकर मैंने डॉ० भारतीय को इस सम्बन्ध में एक विस्तृत पत्र लिखा। उन्होंने मेरी बातों का स्वीकार करते हुए इस विषय पर निबन्ध लिखने की मुझे प्रेरणा दी। मेरे लिए भाषा की समस्या थी, परन्तु डॉ० भारतीय के गुजराती भाषा के ज्ञाता होने से मेरा कार्य सरल हो गया। मैंने अपने पास वर्षों से सञ्चित ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी विषयक सामग्री लिखकर उनको भेज दी, जिसमें उन्होंने कुछ संशोधन भी किया। डॉ० भारतीय ने अपनी व्यस्तता में से समय निकाल कर जो सहयोग प्रदान किया, एतदर्थ मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस सामग्री को प्रकाशनार्थ विभिन्न पत्रिकाओं में पृथक् पृथक् लेख रूप में भेजने का विचार चल ही रहा था। उसी समय शिवरात्रि पर टंकारा में श्री क्षितीश वेदालंकार से भेंट हुई। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ 'आर्यजगत्' में इन लेखों को प्रकाशित करने का मुझे आश्वासन दिया और अपनी वैयक्तिक रुचि लेकर धारावाही रूप में नौ अंकों में उसे प्रकाशित कर पाठकों तक पहुँचाया। उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के टंकारा निवास काल में मुझे

इस शोध कार्य की प्रेरणा मिली थी और उनके द्वारा आगे मुझे मार्गदर्शन भी मिलता रहा। वे मेरे वन्दनीय थे, प्रणम्य थे। उनका आभार प्रदर्शित करने के शब्द मेरे पास नहीं है। उन्होंने लेखमाला की कुछ किस्त प्रकट होते ही उसे 'वेदवाणी' के 'दयानन्द विशेषांक' में प्रकाशित करने का निश्चय किया। अतः यही सामग्री पुनः कुछ संशोधन एवं परिवर्धन के साथ 'वेदवाणी' के जनवरी 1986 के 'दयानन्द विशेषांक (3)' में भी प्रकाशित हुई। इन लेखों के निष्कर्षों से ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित के कई प्रसिद्ध विद्वान् गवेषकों ने भी अपनी सम्मति प्रकट की है।

मैं ऐसा समझता हूँ कि ऋषि जीवनी के शोध कार्य में पण्डित लेखराम और पण्डित देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के पश्चात् यदि किसी सुयोग्य व्यक्ति ने इस दिशा में शीघ्र ही शोघ कार्य को आगे बढ़ाया होता तो उस समय बहुत कुछ बातें सुलभ होतीं। परन्तु ऐसा हो नहीं पाया और इस कार्य की उपेक्षा के परिणाम स्वरूप आज भी हमें ऋषि जीवन विषयक कई छोटे-बड़े भ्रम एवं विवादों का निराकरण करने के लिए प्रवृत्त होना पड़ता है।

कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय हरिद्वार के वर्तमान कुलाधिपति, प्रसिद्ध विद्वान्, महान् वाग्मी, चिन्तक, लेखक, ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त एवं सांसद डॉ० रामप्रकाश का अति आग्रह था कि ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी विषयक मेरे ये शोध निबन्ध एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में शीघ्र ही प्रकाशित किए जाने चाहिए, जिससे इन विषयों की वास्तविकता जिज्ञासु पाठकों को ज्ञात हो और भविष्य में शोध करने वाले को भी आवश्यक मार्गदर्शन

प्राप्त हो सके। इसी प्रयोजन से मैंने इन लेखों का एक बार पुनः अवलोकन किया और उनमें यत्र-तत्र कई आवश्यक संशोधन, परिवर्तन-परिवर्धन भी किए। वृद्धावस्था एवं अस्वस्थ होने के कारण प्रकाशन सम्बन्धी आगे के कार्यों को करने में स्वयं को अब सर्वथा असमर्थ पाकर मैंने मेरी यह सम्पूर्ण सामग्री ऋषि दयानन्द तथा वैदिक धर्म विषयक साहित्य में अभिरुचि रखने वाले श्री भावेश मेरजा को सम्पादित करने हेतु सुपर्द कर दी। श्री भावेश ने मेरे द्वारा प्रदत्त इस सामग्री को अत्यन्त निष्ठा पूर्वक सम्पादित कर उसे इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने का श्लाघनीय कार्य किया है। ग्रन्थ को उत्तम बनाने की दृष्टि से डॉ० रामप्रकाश द्वारा दिए गए उपयोगी सुझावों को भी श्री भावेश ने इस ग्रन्थ में ठीक से समाविष्ट कर लिए हैं। इस सहयोग के लिए श्री भावेश मेरे साधुवाद के पात्र हैं।

अन्ततः इस शोध कार्य में सहायक सभी सज्जनों के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

आशा है कि ऋषि दयानन्द के इतिहास और जीवन का गम्भीर अध्ययन करने वाले लोगों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगा।

दि० 10 अप्रैल, 2015 **दयाल मुनि**

(आर्यसमाज का 141वाँ स्थापना दिन)

'प्रणव', लक्ष्मीनारायण सोसाइटी,
टंकारा, जि० मौरवी (गुजरात)।

ऋषि दयानन्द का एक ऐतिहासिक पत्र[1]

पण्डित गोपालराव हरि जी[2], आनन्दित रहो ।

आज एक साधु का पत्र मेरे पास आया । वह आपके पास भेजता हूँ । साधु का लेख सत्य है । परन्तु आपने चित्तौड़ सम्बन्धी इतिहास में न जाने कहाँ से क्या सुन सुना कर लिख दिया । उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही बार समागम हुआ । आपने प्रतिदिन दो बार होता रहा, लिखा है । आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामों के परिशोधन का अवकाश नहीं । यद्यपि आप सत्य-प्रिय और शुद्ध भाव-भावित ही हैं और इसी हित-चित्त से उपकारक काम कर रहे हैं, परन्तु जब आपको मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं, तो उसके लिखने में कभी साहस मत करो । क्योंकि थोड़ा-सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है । ऐसा निश्चय रक्खो । और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो ।

वैशाख शुक्ल 2 सम्वत् 1939 । स्थान शाहपुरा ।

दयानन्दसरस्वती

---

1. 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन', द्वितीय भाग, पृ० 695, पूर्ण संख्या 668, पत्र 448 । - (सम्पादक)

2. पण्डित गोपालराव हरि प्रणतांकर एक महाराष्ट्रीय सज्जन थे, जिन्होंने ऋषि दयानन्द की प्रथम जीवनी '**दयानन्द दिग्विजयार्क**' लिखी थी । इस जीवनी के प्रथम दो खण्ड 1881 ई० में ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में ही छपे थे और तृतीय खण्ड 1887 ई० में प्रकाशित हुआ था । - (सं०)

अनुक्रम

परिशिष्ट :

● ● ●

निवेदन

पण्डित लेखराम आर्य मुसाफ़िर तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने ऋषि दयानन्द की जीवनी की खोज बहुत श्रद्धा, लगन एवं परिश्रम से की थी । इन दोनों महापुरुषों का आर्यजगत् सदा ऋणी रहेगा । यह काम आसान नहीं था । देवेन्द्रनाथ को चौथी बार टंकारा पहुँचने पर ऋषि दयानन्द की सगी बहिन प्रेमबाई के प्रपौत्र पोपटलाल कल्याणजी रावल से भेंट होने पर प्रारम्भिक जीवनी के बारे में तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त हो सकी थी । अनेक विद्वानों ने ऋषि के जीवन-चरित लिखें हैं । सभी के प्रयास प्रशंसनीय हैं, पर उनमें प्रारम्भिक जीवनी सम्बन्धी यत्र-तत्र अनेक भूलें रहीं हैं । मनुष्य अल्पज्ञ है । इसलिए भूल होना स्वाभाविक है । परन्तु स्वामी मेधार्थी ने निजी कारणों से जन्मस्थान तथा पूर्वजों सम्बन्धी जो भ्रान्तियाँ फैलाईं हैं, वह अक्षम्य अपराध है । स्वयं गुजराती होते हुए भी पण्डित श्रीकृष्ण शर्मा की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय' में न जाने अनेक अशुद्धियाँ कैसे रह गईं । पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने लाभशंकर शास्त्री की बातों में आकर 'महर्षि दयानन्द का भ्रातृवंश और स्वसृ-वंश' पुस्तक में पूर्णतया तथ्यों के विपरीत बातें लिख डालीं । यदि ये दो पुस्तकें न लिखी गई होतीं तो बेहतर था । मैं प्रो० दयाल मुनि आर्य के साथ पूर्णतया सहमत हूँ कि - "यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि ऋषि-जीवनी पर जिसने जैसा चाहा उसने वैसा लिख दिया । इसीलिए किसी ने संशोधन के नाम पर, तो किसी ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए, तो किसी ने अपने अज्ञानवश तथा किसी अन्य ने अपनी धारणा अथवा कल्पना के बल पर अप्रामाणिक, असत्य और अविश्वसनीय बातों को ऋषि-जीवनी में मिला दिया ।"

वर्तमान में टंकारा निवासी वयोवृद्ध दयाल मुनि एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें महर्षि के प्रारम्भिक जीवनी के विषय में सर्वाधिक सही जानकारी है । उन्होंने यह जानकारी वर्षों की सतत साधना से प्राप्त की है । यह जानकारी वे विभिन्न जीवनी लेखकों को देते रहे हैं । उन्होंने पत्रिकाओं में एतद्-विषयक लेख भी लिखे । मैंने पहली बार 2012 ई० में टंकारा की भाग्यशाली भूमि पर उनके दर्शन किए । ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी के बारे में उनसे बातें सुनकर मेरी उनके प्रति श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती रही । मैं उनसे लगातार अनुरोध करता रहा कि वे ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी

सम्बन्धी अपनी जानकारी एक पुस्तक के रूप में सुरक्षित कर दें। आयु की अधिकता तथा वेदभाष्य के गुजराती अनुवाद कार्य में संलग्न होने के कारण उनका आग्रह था कि सामग्री वे प्रदान करेंगे, परन्तु पुस्तक मैं लिखूँ। मुझे लगा कि विषय के साथ जितना न्याय वे स्वयं कर सकेंगे, उतना मैं नहीं कर पाऊँगा। मुझे प्रसन्नता है कि मेरा अनुरोध उनकी व्यस्तता पर भारी सिद्ध हुआ और उन्होंने सभी तथ्यों को लिखना स्वीकार किया। परिणाम यह ऐतिहासिक दस्तावेज है। अनेक बिन्दुओं पर खोजपूर्ण सामग्री पाठकों के समक्ष है। मैंने पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़कर श्री भावेश मेरजा को कई सुझाव दिए, जिनका समावेश उन्होंने इस पुस्तक में कर दिया है। कुशल सम्पादन के लिए उन्हें बधाई।

इस पुस्तक को और अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए कुछ परिशिष्ट इसमें जोड़े गए हैं। सर्वप्रथम पोपटलाल रावल सम्बन्धी प्रो० दयाल मुनि का एक लेख जो फरवरी 1999 में शिवरात्रि के अवसर पर 'टंकारा समाचार' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, संलग्न है। 1926 ई० में जब ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी टंकारा में मनायी गई तो पोपटलाल को टंकारा आर्यसमाज के मन्त्री बनाए गए। मुझे यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि जिस गृह में ऋषिवर ने जन्म लिया था वहाँ पोपटलाल के कारण आर्यसमाज टंकारा का साप्ताहिक सत्संग पारिवारिक रूप में होता रहा और पोपटलाल बड़ी श्रद्धा से ऋषि का गुणगान उसी शुभ गृह में करते रहे। ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर टंकारा में 1926 ई० में पोपटलाल तथा ऋषि दयानन्द के बालसखा 103 वर्षीय इब्राहीम ने जो जानकारी दी थी उसे भी इस पुस्तक में परिशिष्ट के रूप में सुरक्षित किया गया है।

यह जानकारी ऋषि भक्तों को रुचिकर लगेगी - ऐसा मेरा निश्चित मत है। शारीरिक दुर्बलता के बावजूद प्रो० दयाल मुनि ने ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी लिखकर जो उपकार किया है, तदर्थ उनके प्रति आभारी हूँ। ऋषि जीवन की गाथा डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार, सत्यार्थ प्रकाशन, कुरुक्षेत्र के माध्यम से निःशुल्क ऋषि भक्तों तक पहुँचाने का माध्यम बन पाने को अपना सौभाग्य समझता हूँ।

1634, सैक्टर-13
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

रामप्रकाश (डॉ०)
कुलाधिपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

: 1 :

जन्मस्थान विषयक भ्रम-निवारण

ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी और वंश के विषय में विद्वानों द्वारा निबन्ध तथा जीवन-चरित की पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं। अनुसन्धान के नाम पर शोध-प्रबन्ध भी लिखे जाते हैं। इनमें लेखकगण कहीं-कहीं भ्रम या प्रमाद के कारण भूल कर बैठते हैं। जैसे ऋषि दयानन्द के विष-प्रकरण की चर्चा प्रायः चलती रहती है, उसी प्रकार ऋषि के जन्मस्थान, माता-पिता के नाम, शिवरात्रि की उपासना का मन्दिर आदि अनेक विषयों में जो भ्रम फैल रहे हैं, उन्हीं के निवारण करने की दृष्टि से मैंने जो कुछ जानकारी प्राप्त की है, उसका विवरण यहाँ प्रस्तुत करने का मैंने प्रयास किया है।

ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर टंकारा पधारने वाले आर्यों में कुछ समय से यह चर्चा सुनाई पड़ती है कि ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा ही है या जीवापुर ग्राम है ? कई भावुक व्यक्ति तो जीवापुर देखने के लिए भी चले जाते हैं ! डॉ० भवानीलाल भारतीय के 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ में स्वामी मेधार्थी के कथन अनुसार जीवापुर गाँव के ऋषि का जन्मस्थान होने का निर्देश किया गया है, तथा इसका खण्डन भी किया गया है।[1] तथापि इस सम्बन्ध में निम्न वक्तव्य आवश्यक है -

स्वामी मेधार्थी - स्वामी मेधार्थी अब हमारे बीच में नहीं हैं। किसी व्यक्ति

1. द्रष्टव्य : 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती', द्वितीय भाग, परिशिष्ट 1, पृष्ठ 912। वैसे तो डॉ० भारतीय ने अपने इस ग्रन्थ में देवेन्द्रनाथ द्वारा किया गया ऋषि दयानन्द का जन्मस्थान विषयक निर्णय जो टंकारा के पक्ष में है, उसी को ही सर्वत्र मान्य रखा है। - (सं०)

के देहान्त के बाद उसकी आलोचना करना अच्छा नहीं । फिर भी प्रसंगवश इतना कहना आवश्यक है कि स्वामी मेधार्थी टंकारा के महर्षि दयानन्द स्मारक महालय में कुछ काल तक रहे थे, मगर बाद में वे टंकारा ट्रस्ट के विरोधी बन गये थे । पश्चात् वे टंकारा के पास में स्थित जीवापुर ग्राम में कुटिया बनाकर रहे । आगे चलकर उन्होंने 'जीवापुर ज्योति' नाम की एक पत्रिका निकाली और उसके माध्यम से वे प्रचारित करते रहे कि ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा नहीं, अपितु जीवापुर ग्राम है !

देवेन्द्र बाबू का प्रमाण

इस विषय की आलोचना करने से पूर्व हम यहाँ देवेन्द्र बाबू के विचार लिखेंगे, जिन्होंने कई वर्षों तक कठिन परिश्रम कर सामग्री एकत्रित की तथा टंकारा के ऋषि का जन्मस्थान होने का अनेक प्रमाणों द्वारा प्रतिपादन किया एवं ऋषि के पूर्वजों और पिता आदि का विवरण प्रस्तुत किया । यही सत्य और प्रामाणिक भी है। इसलिए प्रथम तदनुसार ऋषि के वंश का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ –

देवेन्द्र बाबू के अनुसार ऋषि के पूर्वज उत्तर भारत से गुजरात में आए और कच्छ में रहे । कच्छ के ठाकुरों ने जामनगर और मौरवी राज्यों की स्थापना की । वे अपने साथ ब्राह्मणों को भी ले आये थे । तदनुसार मौरवी राज्य के ठाकुर रायजी के साथ आने वाले ब्राह्मणों में सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण भी थे। वे प्रथम भूज (कच्छ) से कन्टारिया (कच्छ का एक गाँव) में होकर मौरवी राज्य के वरसामेडी[1] गाँव में आए । वहाँ से वे दो शाखाओं में विभक्त हो

1. 'वरसामेडी' नाम का एक गाँव मालिया (माळिया) तालुका में है और उसी नाम का दूसरा एक गाँव कच्छ जिला में अन्जार के पास भी है । देवेन्द्र बाबू ने 'मौरवी के अन्तर्गत वर्षामेरि (वरसामेडी) ग्राम' लिखा है । (द्रष्टव्य : 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', परिशिष्ट 1, पृष्ठ 642) अतः यहाँ मालिया तालुका का 'वरसामेडी' गाँव का ग्रहण करना उचित प्रतीत होता है । – (सं०)

गए। एक दल मोटा बड़ाल[1] में और दूसरा टंकारा में आकर बस गया। पहले दल के वंश में अब कोई नहीं है।

टंकारा में आकर जो औदीच्य ब्राह्मण बसे, उनमें मेघजी त्रिवेदी नामक एक पुरुष थे। उनके दो पुत्र हुए - विश्रामजी और डोसाजी। जीवा मेहता ने जब 1778 वि० में जीवापुर ग्राम बसाया तो उन्होंने इन्हीं विश्रामजी को प्रचुर भूमि देकर वहाँ पर आबाद किया। वर्तमान में जीवापुर में सामवेदी औदीच्यों के जितने घर हैं, वे इन्हीं विश्रामजी के वंशज हैं। विश्रामजी तो जीवापुर जाकर बस गये और डोसाजी टंकारा में ही रहने लगे। डोसाजी के पुत्र कुंवरजी हुए, और कुंवरजी के पुत्र का नाम था - वेलजी। इन वेलजी के साथ ऋषि दयानन्द के पिता करसनजी त्रिवेदी का कुछ सम्बन्ध था। टंकारा के पोपटलाल और उनकी बुआ वेणी बाई के मुख से हमने सुना है कि ये वेलजी करसनजी के चाचा का पुत्र था।[2] देवेन्द्र बाबू के अनुसार मेघजी तिवारी का वंशवृक्ष इस प्रकार है -

---

1. यह 'मोटा बड़ाल' किस गाँव का द्योतक है, यह स्पष्ट नहीं है। वर्तमान में मौरवी और टंकारा के पास इस नाम का कोई गाँव उपलब्ध नहीं है। हाँ, मौरवी से लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर मालिया (माळिया) तालुका में 'मोटी बरार' नामक एक छोटा गाँव है, जो मालिया तालुका के वरसामेडी गाँव से केवल 18 किलोमीटर की दूरी पर है। 'मोटी बरार' के पास ही दूसरा 'नानी बरार' (गुजराती में 'नानी' अर्थात् छोटी) नामक गाँव भी है। अतः अनुमान है कि यहाँ 'मोटा बड़ाल' इस 'मोटी बरार' गाँव के लिए प्रयुक्त हुआ है। एक 'मोटा वड़ाला' नामक गाँव जामनगर जिला के कालावड़ तालुका में भी है। - (सं०)

2. (क) देवेन्द्रनाथ संकलित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', परिशिष्ट 1, पृष्ठ 642 (ख) विजयशंकर मूलशंकर सम्पादित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 97 (ग) गुजराती पुस्तक 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय', पृष्ठ 83, मूल बँगला लेखक : देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, गुजराती अनुवाद : त्रिभोवनदास दामोदरदास गढ़िया। - (लेखक)
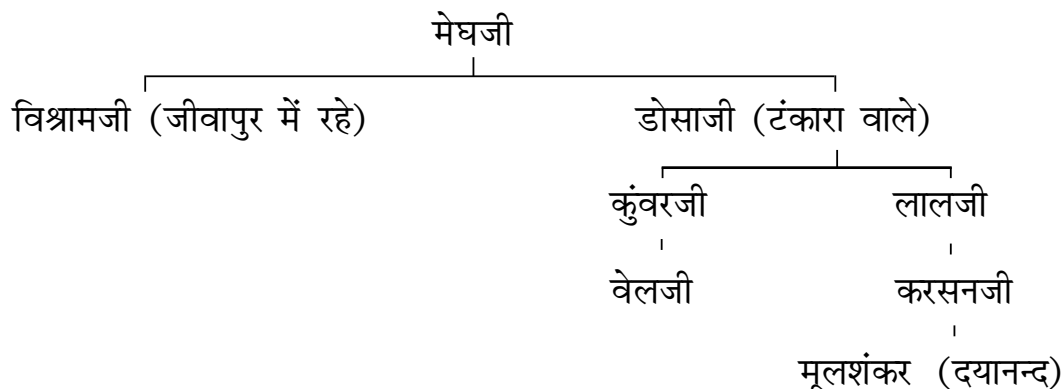
स्वामी मेधार्थी द्वारा प्रस्तुत जो वंशवृक्ष बताया गया है, वह उपर्युक्त वंशवृक्ष से भिन्न है और निम्न प्रकार है[1] –
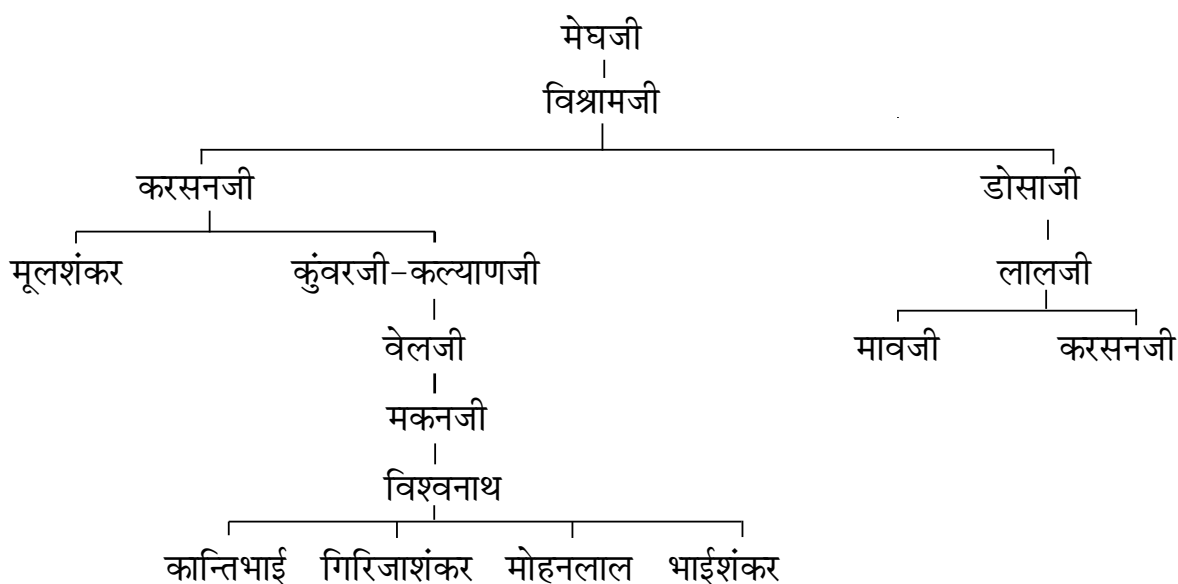
जीवापुर से प्राप्त वंशावली

स्वामी मेधार्थी कथित वंशावली की आलोचना से पूर्व वर्तमान में स्थित भाईशंकर[2] (मेधार्थी द्वारा प्रकाशित वंशवृक्ष के अनुसार विश्वनाथ के पुत्र) से प्राप्त वंशवृक्ष पर दृष्टिपात करें –

---

1. यह वंशवृक्ष उन्होंने एक पत्रिका के रूप में 1965 ई० में प्रकाशित किया था । – (ले०)

2. उन्होंने यह वंशवृक्ष मुझे लिखकर दिया था । – (ले०)
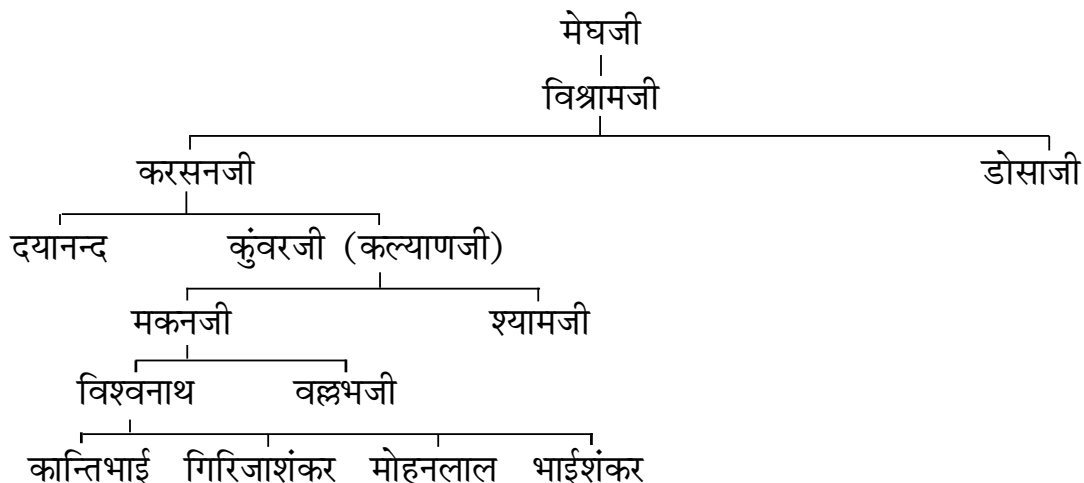
इनमें से गिरिजाशंकर और भाईशंकर आज भी[1] जीवापुर में विद्यमान हैं।

लाभशंकर शास्त्री[2] से प्राप्त वंशावली

उपर्युक्त तीन वंशावलियों के अतिरिक्त पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक को उनके टंकारा निवास के समय मौरवी के पण्डित लाभशंकर शास्त्री ने जो वंशवृक्ष (तथा अन्य सामग्री प्रदान की, उसकी चर्चा हम आगे करेंगे) बताया था, उसके अनुसार पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने 'ऋषि दयानन्द का भ्रातृ-वंश और स्वसृ-वंश' नामक पुस्तक लिखी। इसमें उपर्युक्त वंशवृक्ष इस प्रकार है -

---
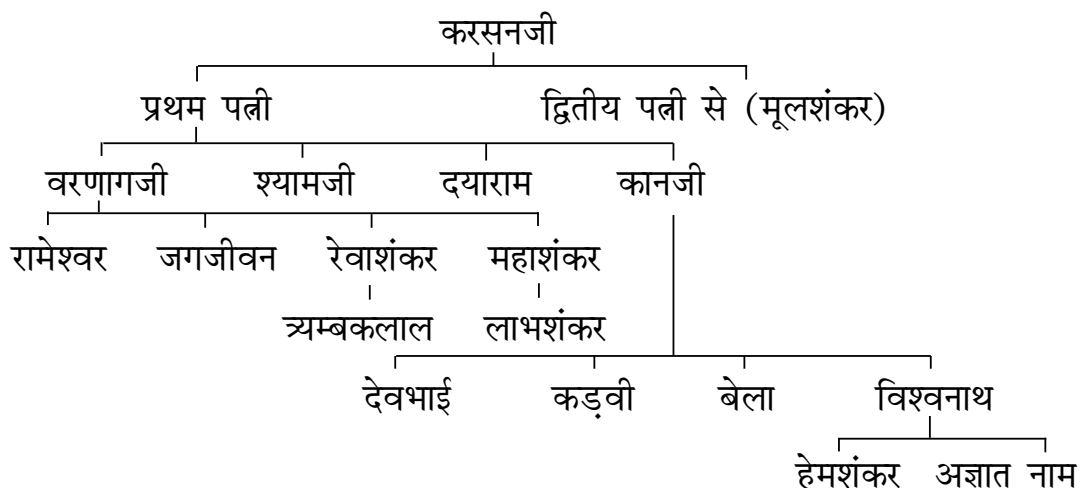
1. दयाल मुनि की यह लेखमाला 'आर्यजगत्' में तथा 'वेदवाणी' के 'दयानन्द-विशेषांक (3)' में 1985 तथा 1986 ई० में क्रमशः प्रकाशित हुई थी, तब। - (सं०)
2. लाभशंकर काशी में 8 वर्ष रहकर व्याकरणाचार्य तथा वेदान्त शास्त्री हुए थे। विशेष परिचय के लिए द्रष्टव्य - 'महर्षि दयानन्द का भ्रातृवंश और स्वसृ-वंश', पृष्ठ 25-26। - (ले०)

हमने यहाँ इस वंशवृक्ष का विषय सम्बन्धित उपयुक्त अंश ही लिखा है, शेष छोड़ दिया है ।[1] इनमें से त्र्यम्बकलाल हड़मतिया ग्राम (टंकारा से सड़क मार्ग से 8 मील तथा पगडण्डी से 5 मील) में तथा लाभशंकर मौरवी में रहते हैं ।[2]

उक्त वंशावलियों की भिन्नता और अप्रामाणिकता

इन चारों वंशावलियों में भिन्नता है और ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में देवेन्द्रनाथ प्रदत्त वंशावली को छोड़कर अवशिष्ट तीन न तो प्रामाणिक हैं और न ही विश्वसनीय । स्वामी मेधार्थी ने जीवापुर को ऋषि का जन्मस्थान सिद्ध करने में पूरे वंशवृक्ष को खिचड़ी बनाकर पेश कर दिया है । देवेन्द्र बाबू के अनुसार पोपटलाल की साक्षी से डोसाजी के पुत्र कुंवरजी, और उसके पुत्र वेलजी जो टंकारा निवासी करसनजी (दयानन्द के पिता) का चचेरा भाई था, उन्हें जीवापुर के विश्रामजी के वंश में जोड़ दिया ।

मैंने लाभशंकर और भाईशंकर को प्रत्यक्ष पूछा तो उन्होंने कहा कि वेलजी नाम का उनका कोई पूर्व पुरुष था – ऐसा उन्होंने कभी नहीं सुना और मेधार्थी ने अपनी मनमानी करके विश्रामजी के भाई डोसाजी को, जो टंकारावासी थे, इनका पुत्र बताया है । इस प्रकार ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत करने का प्रयास किया है ।

भाईशंकर और लाभशंकर द्वारा प्राप्त वंशावलियों में भिन्नता है और वे अविश्वसनीय हैं । मेरे पूछने पर इन दोनों ने बताया कि वे अपने पितामहों के अतिरिक्त उनके पीछे के वंश के पुरुषों के नामों से अनभिज्ञ हैं तथा भाईशंकर के अनुसार करसनजी के पुत्र का नाम कुंवरजी है या कल्याणजी,

---

1. विस्तार के लिए द्रष्टव्य : पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक की 'ऋषि दयानन्द का भ्रातृ-वंश और स्वसृ-वंश' पुस्तक का पृष्ठ 19 । – (ले०)
2. दयाल मुनि की यह लेखमाला 'आर्यजगत्' में तथा 'वेदवाणी' के 'दयानन्द-विशेषांक (3)' में 1985 तथा 1986 ई० में क्रमशः प्रकाशित हुई थी, तब । – (सं०)

यह भी स्पष्ट नहीं है; क्योंकि वह इन दोनों को दो पृथक् स्थानवासी तथा पृथक् व्यक्ति बताते हैं ।

इसके विपरीत पण्डित लाभशंकर ने करसनजी के चतुर्थ पुत्र का नाम कानजी बताया है और आगे कानजी के वंश में तीन पुत्रियाँ और चतुर्थ विश्वनाथ नामक पुत्र बताया है तथा विश्वनाथ के पुत्र का नाम हेमशंकर लिखा है ।

ये वंशावलियाँ सत्य नहीं हैं । इनका अधिक निरसन हम आगे करेंगे ।

वंशावलियों की साम्यता

इन वंशावलियों की साम्यता पर विचार किया जाय तो सर्वसम्मत नाम विश्रामजी का है । इन्हीं विश्रामजी को 1778 वि० में मौरवी के दीवान (महामन्त्री) जीवा मेहता जीवापुर ग्राम की स्थापना के समय वहाँ ले गये और वहीं बसा दिया ।

देवेन्द्रनाथ के अनुसार मेघजी के प्रथम पुत्र विश्रामजी जीवापुर जा बसे और सम्प्रति इस गाँव में जो सामवेदियों के घर हैं, वे सभी विश्रामजी के वंशज ही हैं । मेघजी के द्वितीय पुत्र डोसाजी टंकारा में रहे । उनके पुत्र लालजी हुए, जो स्वामी दयानन्द के पिता करसनजी के पिता थे ।

दो करसनजी

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मेघजी के वंशज त्रिवेदी कुटुम्ब में करसनजी नामक दो व्यक्ति हुए हैं - एक जीवापुर में विश्रामजी का पुत्र और दूसरा टंकारा में लालजी का पुत्र । इन दोनों में एक पीढ़ी का स्पष्ट अन्तर है, क्योंकि मेघजी के जीवापुर स्थित पुत्र विश्रामजी के पुत्र करसनजी हुए, और उधर उन्हीं के टंकारा स्थित पुत्र डोसाजी के पुत्र लालजी के पुत्र करसनजी हुए ।

इस प्रकार जीवापुर स्थित करसनजी मेघजी के पौत्र थे और टंकारा स्थित करसनजी मेघजी के प्रपौत्र थे ।

पर्यालोचना और निष्कर्ष

1. वंश की पीढ़ी और आयु के वर्ष लगाने से मेधार्थी ने जिन जीवापुर स्थित करसनजी के पुत्र को दयानन्द बताया है वह अपने आप में गलत ठहरता है; क्योंकि 1778 वि० में विश्रामजी जब जीवापुर चले गये तब उनकी आयु यदि न्यूनातिन्यून 25 या 30 वर्ष मानी जाए तभी उस समय उनके यहाँ पुत्र करसनजी का जन्म होना सम्भव है। इस प्रकार जीवापुर निवास के बाद अधिकतम 10 या 20 वर्ष भी यदि 1800 वि० में करसनजी का जन्म माना जाय और उधर मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) का जन्म 1881 वि० में हुआ था एवं ऋषि की आत्मकथा के अनुसार इनके दो छोटे भाई और दो बहिनें और थीं। इस हिसाब में करसनजी की 80 या 100 वर्ष से अधिक आयु में मूलशंकर और अन्य सन्तानों का जन्म होना माना जाएगा, जो कि सर्वथा असम्भव है। इसलिए स्वामी मेधार्थी द्वारा जीवापुर निवासी करसनजी को मूलशंकर का पिता बताना सर्वथा गलत है।

2. पण्डित लाभशंकर शास्त्री प्रदत्त सामग्री के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए 14 सितम्बर, 1959 को मैं पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के साथ हड़मतिया गाँव गया था, तब वहाँ के वयोवृद्ध सुतार (बढ़ई) तेजाजी ने यह बताया था कि 1845 वि० में हड़मतिया गाँव में कूप-निर्माण का मुहूर्त देखने के लिए जीवापुर से करसनजी को बुलाया गया था। यह भी जीवापुर निवासी करसनजी के 45 वर्ष या इससे अधिक आयु के होने से मेल खाती है, जो टंकारा निवासी करसनजी की वय से मेल नहीं रखती। (इन करसनजी की वय की चर्चा हम आगे करेंगे।)

3. ऋषि के पिता पौरोहित्य एवं भिक्षावृत्ति नहीं करते थे। इसलिए इनके

द्वारा मुहूर्त देखने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

4. देवेन्द्र बाबू ने ऋषि की आत्मकथा के अनुसार ऋषि के पिता की कसौटी में प्रथम उनका सर्राफ होना, द्वितीय जमींदार होना, तृतीय जमेदार (दण्ड-नायक) होना, चतुर्थ उनके पुत्र का गृह-त्याग करना, तथा अन्तिम उनका कट्टर शिवभक्त होना - ये पाँच बातें बताई हैं, जो जीवापुर के करसनजी में नहीं मिलती हैं और टंकारा के करसनजी में मिलती हैं ।

5. देवेन्द्र बाबू ने ऋषि के जन्मस्थान के लिए टोल, मिताणा, जीवापुर, सज्जनपुर, रामपुर,[1] टीकर और टंकारा - इन सात गाँवों को कसौटी पर रखकर टंकारा की पुष्टि में एकाधिक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं । विस्तारभय से उन्हें यहाँ नहीं लिखा जाता । जिज्ञासु पाठक इन्हें देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय संगृहीत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती जीवन-चरित' के परिशिष्ट 1, विजयशंकर सम्पादित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' एवं गुजराती पुस्तक 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' (मूल बँगला लेखक : देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) में देख सकते हैं ।

6. छठ्ठा हेतु यह है कि स्वामी मेधार्थी ने वंशावली में टंकारा निवासी डोसाजी के पौत्र करसनजी से आगे का वंश क्यों नहीं बताया ? इनके वंशज कौन हैं, कहाँ हैं ? - वस्तुतः यही करसनजी ऋषि के पिता थे, जो पीढ़ी और वय के अनुसार ठीक मेल खाते है ।

7. मेधार्थी ने ऋषि का जन्मस्थान जीवापुर होने के विषय में कोई प्रमाण या आधार प्रस्तुत नहीं किया । जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने जीवापुर के एक वृद्ध सज्जन जालिमसिंह जाड़ेजा से मिलने के लिए

---

1. गुजराती में टोल को 'टोळ', जीवापुर को 'जीवापर टंकारा', सज्जनपुर को 'सजनपर' तथा रामपुर को 'रामपर' लिखा एवं बोला जाता है । - (सं०)

कहा। जालिमसिंह से मैं छोटी आयु से ही परिचित हूँ। उनका अधिकांश जीवन अफ्रीका में व्यतीत हुआ है। ये जब-जब अफ्रीका से जीवापुर आते थे तो टंकारा में मेरे पिताजी से मिलने और कपड़े सिलाने अवश्य आते थे। जीवापुर में जालिमसिंह के बड़े भाई मालूभा रहते थे। वे भी मेरे पिताजी के निकट के मित्र और समवयस्क थे। हमारे ग्राहक होने के कारण मैंने भी उनके कपड़े सिये हैं। मालूभा जब किसी काम के लिए जीवापुर से टंकारा आते थे तब अपना घोड़ा हमारे घर पर ही बाँधा करते थे। इन मालूभा से मेरे पिताजी तथा मैंने ऋषि के वंश के बारे में अनेक बार पूछा तो उन्होंने कुछ नहीं बताया। तब इनसे 10 वर्ष छोटे तथा विदेश में अपना अधिकांश जीवन व्यतीत करने वाले जालिमसिंह के पास ऋषि के वंश के बारे में क्या जानकारी हो सकती है ? केवल टंकारा स्मारक से द्वेष रखने के कारण स्वामी मेधार्थी[1] ने जीवापुर को ऋषि

1. स्वामी मेधार्थी के विषय में टंकारा उपदेशक विद्यालय के आचार्य सत्यदेव विद्यालंकार के अनुसार — "मैं जब 1966 में कार्य के लिए टंकारा गया तो मेधार्थी जी से मेरा परिचय हुआ। वे गुरुकुल कांगड़ी में मुझसे तीन वर्ष आगे के विद्यार्थी थे। खूब परिचित। गुरुकुल में उनका नाम ईश्वरदत्त था। उनके पिता कानपुर के एक प्रसिद्ध आर्य डॉक्टर थे। कानपुर में उनके पिताजी ने कई संस्थाएँ चलाई थीं। श्री मेधार्थी जी की पत्नी भी थी - पुत्र भी। वे 40 वर्ष की आयु में संन्यासी हो गए थे। ... उन्होंने अपना जीवन इस बात को सिद्ध करने में लगा दिया कि टंकारा जन्मस्थान नहीं, जीवापुर जन्मस्थान है। ... श्री दयाल भाई जी का महत्त्व इसलिए है कि उन्होंने श्री मेधार्थी के सारे ताने-बाने अनेक वर्षों के प्रयत्न करके विच्छिन्न कर दिए। **एक बड़े भ्रम से ऋषि-जीवन को मुक्त कर दिया।** ... प्रो० दयाल जी भाई ने विशेष प्रयत्न से भ्रान्तियों को दूर कर **ऋषि-जन्मस्थान के महत्त्व को प्रदर्शित करने का पुण्य कार्य किया।**" - 'महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट का इतिहास', पृष्ठ 20, 21, 31। इसी पुस्तक में सत्यदेव विद्यालंकार ने विस्तार से वर्णन किया है वह पठनीय है। - (ले०)

की जन्मभूमि घोषित किया और इस मिथ्या बात को प्रचलित करने के लिए जालिमसिंह को अपना शिष्य बनाया ।

इसके अतिरिक्त हम आगे ऋषि के भ्रातृवंश के भ्रम-निवारण के प्रसंग में भी यह देखेंगे कि ऋषि दयानन्द के पिता करसनजी टंकारा के थे, जीवापुर के नहीं थे; और न ही वे जीवापुर से टंकारा आये थे । इस भ्रम का निवारण भी टंकारा के जीवापुर मोहल्ला विषयक चर्चा में आगे करेंगे । अन्ततः ऋषि की जन्मभूमि टंकारा ही है, जीवापुर ग्राम नहीं है - यही सिद्ध होता है ।

• • •

: 2 :

ऋषि के भ्रातृवंश सम्बन्धी भ्रम का निराकरण

ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि विषयक चर्चा में लाभशंकर शास्त्री द्वारा प्रदत्त वंशावली से उपयुक्त अंश का निर्देश किया गया है। ये शास्त्री अपने को ऋषि के भाई का वंशज बताते हैं। इनके कथन अनुसार ऋषि के पिता करसनजी को दो पत्नियाँ थीं। मगर यह एक भ्रम है।

पण्डित लाभशंकर शास्त्री द्वारा प्रदत्त वृत्तान्त के आधार पर पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने 'महर्षि दयानन्द का भ्रातृवंश और स्वसृ-वंश' नामक पुस्तक लिखी है। इसके अनुसार करसनजी के दो विवाह हुए थे, इनमें से प्रथम का वंशज लाभशंकर शास्त्री स्वयं को बताते हैं तथा दूसरी पत्नी के देहान्त के बाद बड़ी आयु में करसनजी के दूसरा विवाह करने तथा दूसरी पत्नी से मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) का जन्म मानते हैं।[1] विशेष जानकारी के लिए लाभशंकर शास्त्री ने हड़मतिया गाँव के वयोवृद्ध तेजाजी सुतार से भेंट करने को कहा था। 14 सितम्बर, 1959 को उनसे भेंट करने के लिए मैं भी पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के साथ हड़मतिया गया।

जीवापुर निवासी करसनजी

1. तेजाजी का प्रमाण : तेजाजी के अनुसार उनके प्रपितामह धनजी ने हड़मतिया में पीने के पानी का कुआँ खुदवाने के मुहूर्त का निश्चय करने के लिए 1845 वि० में जीवापुर से करसनजी को बुलाया था और 1914 वि०

1. 'महर्षि दयानन्द का भ्रातृवंश और स्वसृ-वंश', पृष्ठ 17 - (ले०)

में शिवालय की मूर्ति प्रतिष्ठापित करने के लिए भी उन्हीं को बुलाया था। धनजी ने शिवालय की दैनिक अर्चना के लिए करसनजी के बड़े पुत्र वरणागजी को मकान तथा दस एकड़ भूमि देकर हड़मतिया में बसाया था।[1]

समीक्षा :

1. तेजाजी के कथन अनुसार विचार करें तो मालूम होता है कि कूप और शिवालय में कोई शिलालेख नहीं है और तेजाजी की बुढ़ापे की आयु की दुर्बल स्मृति और अपने दादा-परदादा से सुनी हुई बातों से शिवालय स्थापना का संवत् मुझे अधिक विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता; क्योंकि हम पहले लिख चुके हैं कि 1778 वि० में जीवापुर की स्थापना के समय विश्रामजी जीवापुर गए थे, तब करसनजी का सम्भावित जन्म मानें या अधिक से अधिक 1800 वि० में करसनजी का जन्म मानें, तभी 1845 वि० में कूप निर्माण के मुहूर्त की बात इनकी आयु से मेल खाती है। किन्तु 1914 वि० तक इनकी आयु (यदि 1800 वि० में जन्म मानें तो) 114 वर्ष, तथा जीवापुर जाने से पूर्व जन्म मानें तो 140 से भी अधिक वर्ष की आयु बनती है, जो युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होती।
2. सौराष्ट्र में प्रत्येक गाँव की स्थापना के साथ ही प्रायः एक शिव-मन्दिर बनाया जाता है। सो हड़मतिया की स्थापना के बाद चिर काल तक बिना मन्दिर का ग्राम रहना भी सम्भव नहीं।
3. तेजाजी ने करसनजी की दो पत्नियाँ तथा द्वितीय पत्नी से मूलशंकर के जन्म और करसनजी के वंश के विषय में अन्य कोई बात नहीं बताई।

2. त्र्यम्बकलाल का प्रमाण : तेजाजी से मिलने के बाद हम वरणागजी के पौत्र त्र्यम्बकलाल (पूर्व वंशावली में उल्लिखित रेवाशंकर के पुत्र) से मिले। अपने को करसनजी के वंशज सिद्ध करने के प्रमाण के रूप में उन्होंने हमारे समक्ष

---

1. वही, पृष्ठ 17-18 - (ले०)

श्राद्ध से सम्बन्धित एक हस्तलिखित पुस्तक 'नारायण-बलि' प्रस्तुत की। यह पुस्तक गोल बण्डल के रूप में लिपटी हुई एक लम्बे काग़ज पर थी। इसके अन्त में लिखा था - **समाप्त ! संवत् १९१६ना कार्तिक वदी ५ पञ्चम्याम् श्री भोसावारे ! [स] त्रवाड़ी वरण्यागजी करसनजी !! श्रीरस्तु !! कल्याणमस्तु !!**

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के टंकारा से चले जाने के बाद मैं कई बार हड़मतिया गया। 11 सितम्बर, 1963 को मैं पुनः हड़मतिया गया। उस समय मेरे साथ पण्डित भगवान्देव शर्मा भी थे, जो उस समय टंकारा स्मारक ट्रस्ट के अधिष्ठाता थे। उसी समय हम उस हस्तलिखित पुस्तक को टंकारा ले आये और उक्त पंक्तियों की फोटोकापी कराकर पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक को भेज दी।[1]

समीक्षा :

उपर्युक्त प्रमाण को प्रस्तुत करने के बाद हम इस विषय की विवेचना करें तो पूर्व निर्दिष्ट जीवापुर और लाभशंकर प्रदत्त वंशावलियों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि जीवापुर निवासी विश्वनाथ, हड़मतिया निवासी त्र्यम्बकलाल और मौरवी निवासी लाभशंकर - तीनों जीवापुर निवासी विश्रामजी के वंशज सिद्ध होते हैं। अर्थात् करसनजी इन तीनों के प्रपितामह या चौथी पीढ़ी में लगते हैं। ये तीनों समकालीन होते हुए, लाभशंकर के अनुसार करसनजी के चतुर्थ पुत्र कानजी के वंशज विश्वनाथ आयु में 40 या 50 वर्ष बड़े कहे गए हैं।

प्रथम विकल्प : इसके समाधान में दो प्रकार की कल्पना की जा सकती

---

1. यह फोटो कापी मेरे पास विद्यमान है। दूसरी पुस्तक वरणागजी के पुत्र रेवाशंकर लिखित है। उसके अन्त में लिखा है - **'इति मत्स्यपुराणोक्त निलोत्सर्गपद्धतिसमाप्ता:' ॥ संवत् १९३४-ना आषाढ़ शुद्ध ९ गुरुवासरे लिखितं छवाडि रेवाशंकर्वैण्याग जी स्वात्मार्थे लिख्यते ।** - पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक

हैं। एक, सामान्य समाधान – बड़ी और छोटी वय में सन्तानोत्पत्ति भेद से किया जाता है। दूसरा विशेष कारण और समाधान – लाभशंकर कथित अपने प्रपितामह करसनजी की दो पत्नियाँ भी हो सकती हैं, क्योंकि छोटी आयु में उत्पन्न प्रथम पत्नी की सन्तान और वंशज अपने अधिकार के लिए जीवापुर में रहे होंगे और बड़ी आयु में उत्पन्न सन्तान और वंशज हड़मतिया जाकर बसे होंगे। हमारे इस दूसरे अनुमान को लाभशंकर के पितामह वरणागजी की पूर्व निर्दिष्ट हस्तलिखित पुस्तक प्रमाण रूप बनकर पुष्ट करती है, क्योंकि करसनजी का जन्म अधिक के अधिक 1800 वि० में होने की विवेचना हम ऊपर कर आये हैं। तदनुसार बड़ी आयु में दूसरी पत्नी से 1850 वि० के बाद वरणागजी का जन्म माना जाए तो उन्होंने पुस्तक भी प्रायः 65 या 70 वर्ष की आयु में लिखी हो, ऐसा माना जा सकता है। अर्थात् विश्रामजी का 25 या 30 वर्ष की आयु में 1778 वि० में जीवापुर में निवास करना और पौत्र वरणागजी का 1916 वि० में पुस्तक लिखना (ये दोनों संवत् निश्चित और लिखित रूप में होने से प्रामाणिक हैं) – इतने वर्षों का अन्तर ही करसनजी की बड़ी आयु में द्वितीय पत्नी से वरणागजी का जन्म होना प्रतिपादित करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि लाभशंकर द्वारा प्रदत्त करसनजी के दो विवाह होने का जो वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया, वह जीवापुर निवासी करसनजी का है और उक्त शास्त्री ही द्वितीय पत्नी से उत्पन्न वंशजों में आते हैं।

दूसरा विकल्प : एक विकल्प यह भी हो सकता है कि करसनजी की प्रथम पत्नी से पुत्रियाँ ही उत्पन्न हुई हों अथवा पुत्र उत्पन्न होने के बाद छोटी आयु में ही उसका देहान्त हो गया हो। इसलिए पत्नी के देहान्त के बाद पुत्र की कामना से बड़ी आयु में दूसरा विवाह किया हो और यह सम्भव है कि इसी दूसरी पत्नी से (हड़मतिया और जीवापुर वंशज) चारों पुत्र उत्पन्न हुए हों।

तीसरा विकल्प : यहाँ कोई ऐसी शंका उठा सकता है कि सौराष्ट्र के

रिवाज के अनुसार पिता अपने जीवन का अवशिष्ट समय छोटे पुत्र के साथ रहकर बिताता है और करसनजी अन्त तक जीवापुर रहे हैं, तो इसका समाधान यह हो सकता है कि उपर्युक्त दूसरे विकल्प के अनुसार वे दूसरी पत्नी के चारों पुत्रों में से छोटे के साथ जीवापुर में रहे होंगे; क्योंकि उनका ही वंश जीवापुर में स्थित है । और जीवापुर वंशज विश्वनाथ के आयु में लाभशंकर आदि से बड़ा होने में हमने प्रथम ही छोटी-बड़ी आयु में सन्तानोत्पत्ति होना, इस प्रकार समाधान कर दिया था ।

निष्कर्ष :

अस्तु, यह निश्चित है कि वर्तमान में जीवापुर, हड़मतिया और मौरवी स्थित सब जीवापुर निवासी करसनजी के ही वंशज है और यह पहली या दूसरी पत्नी से उत्पन्न हुए हैं । इनसे ऋषि दयानन्द का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ऋषि दयानन्द टंकारा निवासी करसनजी लालजी के पुत्र थे ।

उपर्युक्त विवरण से तथा तेजाजी के कथन के सारांश से स्पष्ट है कि जीवापुर निवासी करसनजी पौरोहित्य करने वाले यजमानों के दान से आश्रित जीवन व्यतीत करने वाले तथा आजन्म - मृत्यु पर्यन्त जीवापुर में रहने वाले थे । और हम पूर्व पृष्ठों में यह देख चुके हैं कि इन करसनजी के यहाँ (विशेषतः उनके जन्म और आयु का विचार करने पर) मूलशंकर का जन्म होना सम्भव नहीं है ।

ऋषि के पिता करसनजी : हमने मेघजी के जीवापुर स्थित पौत्र और टंकारा स्थित प्रपौत्र का पूर्व में निर्देश किया था । तदनुसार जीवापुर स्थित करसनजी का परिचय, उनके दो विवाह तथा उनके वंशजों की विवेचना ऊपर की है । अब मेघजी के प्रपौत्र करसनजी अर्थात् ऋषि के पिता करसनजी के विषय में संक्षेप से विचार किया जाता है -

प्रथम हम पोपटलाल प्रदत्त तथा देवेन्द्रनाथ लिखित वंशावली के आधार पर विचार करते हैं । इसके अनुसार मेघजी के टंकारा स्थित छोटे पुत्र डोसाजी थे । इनका जन्म अनुमानतः 1760 या 1765 वि० मानें और डोसाजी के

पुत्र लालजी का जन्म यदि 1800 वि० के आस-पास मानें तो इनके छोटे पुत्र करसनजी (ऋषि के पिता) का जन्म 1842 वि० के आस-पास मान सकते हैं और मूलशंकर का जन्म 1881 वि०[1] में होना उपर्युक्त वृत्त से सम्यक् रूपेण मेल खा सकता है । करसनजी के जन्म का उपर्युक्त आनुमानिक संवत् उनके जीवन की प्रत्येक घटना से भी मेल खाता है ।

पूर्व निर्देश के अनुसार टंकारा के करसनजी (ऋषि के पिता) **(1) सर्राफ (2) जमीदार (3) जमेदार** तथा **(4) शिवभक्त** थे तथा **(5)** उन्हीं के **पुत्र ने गृहत्याग** किया था । इस विषय से सम्बन्धित जो संवत् और प्रमाण मिलते हैं, उनका निर्देश इस प्रकार है -

1. **सर्राफ :** करसनजी के सर्राफ होने का उल्लेख स्वयं ऋषि ने अपनी आत्मकथा में किया है और लिखा है कि उनके यहाँ भिक्षा-वृत्ति नहीं होती थी, अपितु जमींदारी और लेन-देन से जीवन-निर्वाह होता था । इसका प्रमाण पोपटलाल से प्राप्त हुई बही में उपलब्ध होता है, जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि 1858 वि० तथा 1863 वि० में करसनजी ने मेघपुर-झाला गाँव के ग्रासियाओं[2] को बहुत बड़ी रकम दी थी । इन बातों से करसनजी का सर्राफ होना सिद्ध होता है ।

2. **जमींदार :** करसनजी जमीदार थे, इस तथ्य की पुष्टि ऋषि के इस कथन से होती है कि उनके गाँव से तीन कोस पर एक अन्य गाँव में उनकी जमींदारी थी । करसनजी ने 1883 वि० में जामनगर राज्य के

---

1. डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्मतिथि' ग्रन्थ में फाल्गुन कृष्णा दशमी (दाक्षिणात्यों के अनुसार माघ कृष्णा दशमी), शनिवार, संवत् 1881 वि० (उत्तरीय), तदनुसार 12 फरवरी, 1825 ई० को महर्षि दयानन्द की प्रामाणिक जन्मतिथि मानी है । - (सं०)

2. 'ग्रासिया' (गुजराती में 'गराशिया') उसे कहा जाता था कि जिसे गाँव की रक्षा, प्रबन्धादि के लिए राज्य की ओर से कुछ ग्राम व भूमि दी जाती थी । वे प्रायः राजा के सगे-सम्बन्धी या निकट के लोग होते थे । - (सं०)

हड़ियाणा गाँव में अपने दोनों भानजों को जमीन दी थी, इस आशय का दान-पत्र भी प्राप्त हुआ है ।

3. **जमेदार :** करसनजी जमेदार थे । ऋषि ने शिवरात्रि की रात में जब शिवालय से घर जाना चाहा तब पिता ने सिपाही साथ लेकर जाने के लिए कहा । उनके घर से निकल भागने पर अश्वारोहियों द्वारा उनकी खोज करवाने तथा सिद्धपुर में सिपाहियों का पहरा लगवाने से भी यह बात सिद्ध होती है । एक अन्य प्रमाण यह भी मिलता है कि टंकारा के जमेदार करसनजी ने 1869 वि० में मालिया (गुजराती में 'माळिया') के मुसलमान डाकू मियाणा लोगों के साथ कागदड़ी गाँव में युद्ध किया था और टंकारा के दरबारगढ़ के पश्चिम भाग में करसनजी की अश्वशाला भी थी ।
4. **शिवभक्त :** टंकारा के करसनजी शिवभक्त थे । उन्होंने टंकारा में कुबेरनाथ का शिवमन्दिर बनवाया था । इस मन्दिर की पूजा के लिए मौरवी के ठाकुर पृथ्वीराज जी ने 1887 वि० में करसनजी को जमीन प्रदान की थी । इसका दान-पत्र भी प्राप्त हुआ है ।
5. **पुत्र का गृहत्याग :** टंकारा स्थित करसनजी के पुत्र के गृहत्याग के भी प्रमाण मिले हैं ।

उपर्युक्त पाँचों बातों का संक्षिप्त संकेत[1] हमने इसलिए दिया है कि इनमें बताए गए सब संवत् लिखित प्रमाण रूप में प्राप्त हुए हैं और वे सब टंकारा निवासी करसनजी लालजी त्रिवाड़ी से सम्बन्धित हैं और इनके पूर्व निर्दिष्ट जन्म तथा वय के आनुमानिक विवरण से भी मेल खाते हैं । अतः इसकी पुष्टि के लिए उपर्युक्त प्रमाणों से अधिक की आवश्यकता नहीं हैं ।

जीवापुर स्थित करसनजी विश्रामजी का जन्म संवत् और आयु उपर्युक्त

---

1. विस्तार के लिए द्रष्टव्य : देवेन्द्रनाथ संगृहीत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' का परिशिष्ट 1, 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' (गुजराती पुस्तक) और 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' - (ले०)

संवतों से मेल नहीं खाती, जैसाकि हम ऊपर देख चुके हैं और उपर्युक्त पाँच बातें भी उनमें नहीं मिलतीं ।

एक और असंगति : इसके अतिरिक्त यदि सामान्य बुद्धि के भी सोचा जाए कि जो करसनजी अपने भानजे को जमीन का दान देते हैं तथा रुपयों का लेन-देन करने वाले सर्राफ हैं - उन्हें यदि लाभशंकर के अनुसार जीवापुर निवासी माने जाएँ, तथा उनकी प्रथम पत्नी के चार पुत्र माने जाएँ, तो क्या उन्होंने अपने किसी भी पुत्र को कुछ नहीं दिया ? अथवा पुत्रों ने अपने अधिकार के लिए कुछ नहीं किया ? तथा अपना सब कुछ उन्होंने अपनी पुत्री प्रेमबाई और दामाद मंगलजी रावल (पोपटलाल के पूर्वज) को दे दिया ? ये सब असंगतियाँ उत्पन्न होती हैं । पुत्री को तो पुत्र के न होने पर ही सम्पत्ति दी जाती है ।

निष्कर्ष

इस सब से सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्द के पिता टंकारा निवासी करसनजी लालजी त्रिवेदी थे और वे मेघजी के पुत्र डोसाजी के वंशज थे । अर्थात् लालजी के पुत्र थे । दूसरी ओर जीवापुर निवासी करसनजी विश्रामजी के पुत्र थे और इनके वंशज मौरवी, हड़मतिया तथा जीवापुर आदि में विद्यमान हैं । करसनजी - यह एक ही नाम के दो व्यक्तियों के जीवन को एक साथ जोड़ देने से यह भ्रम उत्पन्न हुआ है ।

अन्ततः इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि टंकारा निवासी करसनजी की दो पत्नियाँ नहीं थीं । पुनः मूलशंकर का करसनजी की दूसरी पत्नी से उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । इसी प्रकार पण्डित लाभशंकर के कथन का भी मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) के परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं है, और वर्तमान में ऋषि के भ्रातृवंश में कोई भी विद्यमान नहीं है । पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा पण्डित लाभशंकर प्रदत्त जानकारी का पुस्तक रूप में प्रकाशित न किया जाना ही श्रेयस्कर होता ।

• • •

: 3 :

ऋषि के वंश-वृक्ष की प्राप्ति के प्रयत्न

ऋषि दयानन्द ने पूना-प्रवचन में कहा था कि मेरे कुटुम्बियों के इस समय (1875 ई० में) पन्द्रह घर होंगे। इससे अनुमान होता है कि जीवापुर और हड़मतिया निवासी भी स्वामीजी के कुटुम्बी हैं।

देवेन्द्रनाथ के अनुसार उनके पूर्वजों को सौराष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर जो भूमि दान में मिली थी, उन पूर्वजों में हरिभाई त्रिवेदी का नाम आता है।

मैंने ऋषि के पूर्वजों का पूर्ण वंशवृक्ष प्राप्त करने के लिए जो प्रयत्न किए उनमें सम्पूर्ण सफलता मिलना तो सम्भव नहीं, तथापि निरन्तर 25 वर्षों के प्रयत्न से थोड़ी सफलता अवश्य प्राप्त हुई। उसी के आधार पर पूर्वोक्त स्वामी मेधार्थी कथित जन्मस्थान और लाभशंकर कथित भ्रातृवंश विषयक भ्रम का निवारण पूर्व पृष्ठों में किया है। यहाँ वंशवृक्ष प्राप्ति के जो प्रयत्न किए हैं, उनका विवरण दिया जा रहा है।

हड़मतिया में प्रयत्न

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के साथ मैं प्रथम हड़मतिया गया, उसके बाद भी वहाँ कई बार गया। 11 सितम्बर, 1963 को भगवान्देव मेरे साथ थे और उस समय हम त्र्यम्बकलाल से प्राप्त कर उनके पितामह वरणागजी करसनजी की हस्तलिखित पुस्तक साथ लाए और उसकी फोटोप्रति करवाई। 1963 ई० में त्र्यम्बकलाल 80 वर्ष के आसपास थे। लाभशंकर से आयु में बड़े होने के कारण उनकी जानकारी अधिक होगी, इस अपेक्षा से जब मैं हड़मतिया गया और उनसे करसनजी के आगे की पीढ़ी का नाम पूछा

तो करसनजी के पिता का नाम विश्रामजी, विश्रामजी के पिता का नाम मेघजी और मेघजी के पिता का नाम संघजी बताया । इसके आगे के नामों का उनको पता नहीं था । इस तरह मेघजी के आगे की एक पीढ़ी का नाम जो अब तक नहीं मिलता था, वह संघजी के रूप में मिला । यह संघजी ऋषि के भी पूर्वज होते हैं ।

जब हमने उनके किसी अन्य हस्तलिखित पुस्तक की जानकारी चाही तो उन्होंने आठ पुस्तकों का एक बण्डल हमारे सामने रखा । इन पुस्तकों के नाम थे - भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, विवाह संस्कार, तुलसी विवाह, अज्ञात नाम - विवाह सम्बन्धी विधि, मृतकोत्तर विधि, श्राद्ध विधि और नारायण बलि ।

इनके अन्तिम पुस्तक के अन्त में लेखक वरणागजी करसनजी का नाम तथा संवत् आदि लिखे हुए थे, जिनका वर्णन मैं पूर्व कर आया हूँ । अवशिष्ट पुस्तकें हमारे काम की न होने से हमने लौटा दीं ।

मैंने त्र्यम्बकलाल से उनकी माता और आगे की पीढ़ी की मातामहियों के नाम पूछे तो त्र्यम्बकलाल की पत्नी लक्ष्मीबेन ने बड़े उत्साह से बिना किसी रुकावट से इस प्रकार बताएँ -

त्र्यम्बकलाल	—	रेवाशंकर	—	वरणागजी	—	करसनजी
|		|		|		|
पत्नी		पत्नी		पत्नी		पत्नी
|		|		|		|
लक्ष्मीबेन		लाधीबेन		मीठीबेन		कमरबेन

इसके आगे के नाम पूछे तो उन्हें पता नहीं था । मैंने उनसे पूछा कि ये नाम आपको किसने बताएँ, आपको कैसे याद हैं तथा कैसे माना जाए कि ये सच हैं । तो उत्तर में उन्होंने कहा कि ये नाम सास लाधीबेन ने बताए हैं और भाद्रपद मास में श्राद्ध करते समय हम इन नामों का स्मरण कर पिण्ड अर्पण करते हैं । इसलिए मुझे ये नाम ठीक से याद हैं ।

सौराष्ट्र में भाद्रपद कृष्ण पक्ष में[1] श्राद्ध किये जाते हैं। उस समय पूर्वजों की मृत्यु-तिथि को स्मरण कर इस पक्ष की उन्हीं तिथियों में उनके नाम से श्राद्ध किया जाता है। किन्तु सभी मृतक स्त्री पूर्वजों के लिए एक ही दिन नवमी तिथि निश्चित मानकर उनके नाम से श्राद्ध किया जाता है। इसी प्रथा के कारण उक्त मातामहियों के नाम प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त लक्ष्मीबेन ने एक और बात बताई कि हमारे घर में मेरा द्वितीय पुत्र महेश्वर जब क्रोध करता था, रूठता था, तब मेरी सास लाधीबेन कहा करती थी कि अपने कुटुम्ब में एक दयाराम घर से भाग गया था, वैसे तू चला मत जाना।

हड़मतिया से प्राप्त उक्त विवरण और मातामहियों की उक्त नामों की प्राप्ति का निर्देश मैंने पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक को अपने पत्र में किया, किन्तु नाम नहीं लिखे थे। इसलिए उन्होंने मुझसे 12 अक्टूबर, 1963 के पत्र में नाम लिख भेजने का आग्रह किया, किन्तु मैंने नहीं लिखे। क्योंकि जब तक ये करसनजी ऋषि के पिता सिद्ध नहीं हो जाते तब तक ऋषि-जीवन जैसे पवित्र और ऐतिहासिक विषय में, जबकि ऋषि की माता के नाम को लेकर विवाद तो चल ही रहा है, मैंने वृद्धि करना उचित नहीं समझा। अब 20 वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो जाने पर मैंने ये नाम प्रकट किए हैं। तब भी भ्रम उत्पन्न न हो इसलिए यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यहाँ करसनजी की पत्नी का नाम जो कमरबेन बताया गया है वह ऋषि की माता का नाम नहीं है अर्थात् टंकारा निवासी करसनजी की पत्नी का

---

1. सौराष्ट्र में कृष्ण पक्ष चान्द्र मास का अन्तिम पक्ष माना जाता है। तदनुसार उत्तर भारत में आश्विन मास का जो पहला कृष्ण पक्ष है, उसे सौराष्ट्र तथा दक्षिण के सभी प्रान्तों में भाद्रपद का अन्तिम पक्ष माना जाता है। दोनों पञ्चाङ्गों की इस गणना को न जानने वाले उत्तर भारतीय दीपावली और शिवरात्रि के सम्बन्ध में धोखा खाते हैं। गुजरात और दक्षिण भारत में दीपावली आश्विन में और शिवरात्रि माघ में मनाई जाती है। पञ्चाङ्ग गणना भेद से महीनों के नामों में भेद होता है। दिन तथा अंग्रेजी तारीख सर्वत्र एक ही होती हैं। - पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक

नाम नहीं है, किन्तु जीवापुर निवासी करसनजी की पत्नी का नाम है। ऋषि की माता के नाम पर मैं अपने विचार इसी पुस्तक में आगे यथास्थान प्रस्तुत करूँगा।

सारांश : हड़मतिया के इस प्रयत्न का सारांश यह है कि इस जानकारी से जीवापुर निवासी करसनजी के विषय का पूरा चित्र स्पष्ट हो गया और स्वामी मेधार्थी द्वारा उत्पन्न किया गया भ्रम तथा ऋषि के तथाकथित भ्रातृ–वंश विषयक भ्रम का भी निवारण हो गया। मेरा मुख्य उद्देश्य तो ऋषि के पूर्वज हरिभाई त्रिवेदी से आगे या पीछे की पीढ़ियों के नाम तथा वंशवृक्ष प्राप्त करने का था। उसमें त्र्यम्बकलाल से प्राप्त यह जानकारी अवश्य मिली कि मेघजी की एक पीढ़ी आगे का नाम अर्थात् मेघजी के पिता का नाम संघजी था। यह संघजी ही ऋषि के पूर्वज थे, यह हम पहले ही कह आए हैं।

हड़मतिया में दूसरा प्रयत्न

मैं एक दिन अपनी टंकारा स्थित (दर्जी की) दूकान पर काम कर रहा था तब एक वृद्ध सज्जन कपड़े सिलाने आए। इनके कपड़े सिलते–सिलते मैंने सामान्य वार्तालाप में उनके गाँव आदि का नाम पूछा तो उन्होंने बताया कि वे हड़मतिया गाँव के निवासी हैं। उनकी आयु 110 वर्ष है और वे हरिजनों के बारोट (चारण) जाति के हैं। उनकी वय को देखकर तथा यह जानकर कि बारोट जाति का कार्य अपने यजमानों की वंशावली को अपने रिकार्ड में रखने का होता है, इसीलिए उन्हें 'बही–बचा' (अर्थात् बही को बांचने वाला) या 'बारोट' कहते हैं, मैंने उनसे हड़मतिया और करसनजी की विशेष जानकारी पूछी तो उन्होंने अपनी स्मृति को सतेज करने का प्रयत्न किया तथा कई बातें बताईं जो मुझे विश्वसनीय लगीं। मैंने उनसे पूछा कि क्या उनकी बहियों में कुछ लिखा हुआ है, तो उन्होंने कहा कि हड़मतिया की स्थापना से लेकर सब इतिहास है।

उसके पश्चात् भी मैं कई बार हड़मतिया गया, परन्तु प्रयत्न करने पर भी त्रिवेदी वंश के ब्राह्मणों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं हुई।

हर्षद माता में प्रयत्न

सौराष्ट्र में बच्चों के मुण्डन संस्कार प्राय: अपनी-अपनी कुलमाताओं (कुलदेवियों) के मन्दिरों में होते हैं । इसलिए मैंने ऋषि की कुलमाता का पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि पोरबन्दर से 30 किलोमीटर दूरी पर स्थित हर्षद माता के प्रसिद्ध मन्दिर में इस परिवार के बच्चों के मुण्डन संस्कार होते थे । संस्कार के पूर्व मुण्डन कराने वाले बालक तथा उसके पिता आदि का कोई नाम लिखा जाता है या नहीं, यह जानकारी प्राप्त करने के लिए मैंने हर्षद माता के मन्दिर के पुजारी वल्लभगर दौलतगर (वल्लभगिरि दौलतगिरि) को 7 जनवरी, 1962 को जवाबी पत्र भेजा । उन्होंने 23 जनवरी, 1962 को मुझे विस्तार से उत्तर दिया, जिसका सारांश यह था कि – त्रिवेदी कुटुम्ब का मुण्डन संस्कार तो यहाँ होता है, किन्तु आने वालों के नाम आदि लिखे जाने या किसी पुस्तक में अंकित किए जाने की कोई व्यवस्था नहीं है । इसलिए इस प्रयत्न से भी कोई ठोस जानकारी नहीं मिली ।

मौरवी में प्रयत्न

मौरवी निवासी लाभशंकर करसनजी द्वारा प्रदत्त जानकारी की चर्चा हम पहले कर चुके हैं । मैं उनसे सर्वप्रथम 20 अगस्त, 1964 को मिला था और तब से अब 6 नवम्बर, 1984 तक इन 20 वर्षों में कई बार मिला था तथा पत्रव्यवहार भी किया । इन सारी मुलाकातों और पत्रों का सार यह रहा कि करसनजी की दो पत्नियाँ होने के विषय में उनके पास कोई लिखित प्रमाण नहीं है । उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि उनके प्रपितामह करसनजी के पिता का नाम विश्रामजी था । इसलिए उनसे आगे की पीढ़ियों के नामों की उनसे आशा रखना व्यर्थ ही था । लाभशंकर ने जो वंशावली दी, उसमें करसनजी के चार पुत्रों में जीवापुर स्थित चतुर्थ पुत्र कानजी की पीढ़ियों और वंशजों के नाम जो बताए गए हैं, वे भी सत्य से रहित हैं । इसलिए विषय के अनुरूप इनकी आलोचना यहाँ प्रस्तुत करता हूँ ।

लाभशंकर ने कानजी की तीन पुत्रियाँ - देवबाई, कड़वी और बेला नाम की बताई तथा पुत्र का नाम विश्वनाथ बताया। विश्वनाथ के एक पुत्र का नाम हेमशंकर बताया, किन्तु दूसरे का नाम वे नहीं बता सके। जीवापुर स्थित विश्वनाथ के पुत्र भाईशंकर (यह लेखमाला 1985 ई० में लिखी गई थी तब विद्यमान) प्रदत्त पूर्वोक्त वंशावली के अनुसार तथा जीवापुर के वृद्ध व्यक्तियों से प्राप्त जानकारी के अनुसार देखा जाए तो लाभशंकर द्वारा बताए गए करसनजी के चतुर्थ पुत्र कानजी का ही नाम कुंवरजी अथवा कल्याणजी था और इनके पुत्र मकनजी और शामजी थे और मकनजी के वल्लभजी तथा विश्वनाथ दो पुत्र थे तथा विश्वनाथ के भाईशंकर आदि चार पुत्र जीवापुर में हैं।

अब लाभशंकर ने कानजी की प्रथम पुत्री का नाम देवबाई बताया। वह विश्वनाथजी के बड़े भाई वल्लभजी की पत्नी का नाम था। किन्तु इनके कोई पुत्र न था, किन्तु रेवाबाई नामक पुत्री थी। इनका विवाह टंकारा में प्रभाशंकर रावल नामक व्यक्ति से हुआ था। रेवाबाई (रेवाबेन) की दो पुत्रियाँ वर्तमान जामनगर में हैं।[1]

लाभशंकर ने कानजी की दूसरी पुत्री का नाम कड़वी और तीसरी का नाम बेला बताया है तथा चौथी सन्तान पुत्र विश्वनाथ बताया है। वास्तव में यह भी कानजी का पुत्र नहीं था, अपितु उपर्युक्त करसनजी के पौत्र मकनजी का पुत्र था। यह हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि यह विश्वनाथ करसनजी की चौथी पीढ़ी में जीवापुर स्थित वंशज है और लाभशंकर से आयु में बड़े होते हुए भी समान-अन्तर पीढ़ी के हैं। इतना स्पष्ट होते हुए लाभशंकर इनको कानजी का पुत्र बताते हैं और आगे उनका पुत्र हेमशंकर को बताते हैं। किन्तु यह हेमशंकर विश्वनाथ का पुत्र ही नहीं है।

---

1. दयाल मुनि की यह लेखमाला 'आर्यजगत्' में तथा 'वेदवाणी' के 'दयानन्द-विशेषांक (3)' में 1985 तथा 1986 ई० में क्रमशः प्रकाशित हुई थी, तब। - (सं०)

जामनगर में प्रयत्न

प्रसंग अनुकूल इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए तथा विस्तृत जानकारी लेने के लिए जब मैं 20 अगस्त, 1964 को लाभशंकर से मिलने गया तब उन्होंने मुझसे कहा कि मैं वर्तमान में जामनगर में रहने वाले हेमशंकर (जो मूलतः जीवापुर निवासी थे) से भेंट करूँ, उनसे बहुत जानकारी मिलेगी । इस पर मैं हेमशंकर को मिलने जामनगर गया, जो वहाँ आयुर्वेदिक कॉलेज में अध्यापक थे । जब उनसे परिचय हुआ तो उन्होंने लाभशंकर के इस कथन पर आश्चर्य प्रकट किया कि जिसे वे विश्वनाथ का पुत्र हेमशंकर बता रहे हैं वे वही हेमशंकर तो हैं और जीवापुर निवासी ब्राह्मण भी हैं । किन्तु त्रिवेदी उपगोत्र के न होकर 'व्यास' हैं । उन्होंने यह भी बताया कि इनके दादा नत्थूराम तथा विश्वनाथ के पिता मकनजी दोनों एक दूसरे से सम्बन्ध में मामा के और बुआ के पुत्र-भाई होते थे । लाभशंकर द्वारा प्रदत्त इस गलत सूचना से ही यह सिद्ध होता है कि उनकी यह सारी जानकारी कितनी दोषपूर्ण है ।

जामनगर आयुर्वेदिक कॉलेज में अध्यापक बनकर मैं जनवरी 1969 में आया । हेमशंकर भी इसी कॉलेज में अध्यापक थे । इसलिए मैं उनसे इस विषय में बराबर जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न भी करता रहा । मैं अध्यापन के साथ अपने विषय काय-चिकित्सा के अनुरूप हस्पताल में चिकित्सक का कार्य भी करता था । उसी में विश्वनाथ के पुत्र भाईशंकर भी केस राइटर थे । इसलिए इन दोनों जीवापुर वासियों से अधिकाधिक जानकारी सम्भव थी जो सरलता से प्राप्त भी हुई । उन्होंने सम्बन्धित गाँव और व्यक्तियों से मिलने पर अधिक वृत्त प्राप्त होने का संकेत दिया था । मैं वहाँ गया, सम्पर्क किया तथा पूरी जानकारी अपने पास भी रखी, किन्तु मुख्य विषय से सम्बद्ध कुछ अधिक प्राप्त नहीं हुआ । इसलिए यहाँ उसका विवरण देना अनावश्यक है, किन्तु विषय सम्बन्धित दो बातें यहाँ प्रस्तुत करता हूँ -

1. हेमशंकर के अनुसार विश्वनाथ कहा करते थे कि वे दयानन्द के कुटुम्बी हैं और उनके पास पूरा वंशवृक्ष भी है; किन्तु ऋषि दयानन्द के विषय में उस समय ऐसा भ्रम फैल गया था कि वे विधर्मी हो गए थे ! इसलिए उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द से भी सत्य बात छिपाई ।

2. स्वामी श्रद्धानन्द का जीवापुर जाना : विश्वनाथ के सम्बन्ध में हेमशंकर एक अन्य प्रसंग बताते हैं कि दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर जब स्वामी श्रद्धानन्द टंकारा आए थे तो एक दिन सायं जीवापुर आए और विश्वनाथ से मिले । तब स्वामीजी ने विश्वनाथ से पूछा कि क्या उनके कुटुम्ब का कोई लड़का भाग गया था । किन्तु विश्वनाथ ने जानबूझ कर गलत उत्तर दिया कि उनके कुटुम्ब से मूलशंकर नामक कोई लड़का नहीं भागा और जो लड़का घर से भागा था वह हरिजनों के ब्राह्मण का लड़का था । यह सुनकर स्वामी श्रद्धानन्द, जिनका विचार रात्रि में जीवापुर रुकने का था तुरन्त वापस टंकारा चले गए । हेमशंकर अपनी सेवा से निवृत्त होने के बाद (1985 ई० में) जामनगर में ही रह रहे हैं । उन्होंने मुझे एकाधिक बार इस घटना की चर्चा की और स्वामी श्रद्धानन्द के डीलडौल और व्यक्तित्व के बारे में भी बताया ।[1] संक्षेप में, उस समय ऋषि दयानन्द के परिजनों में उनके बारे में गलत धारणाएँ प्रचलित थीं । इस कारण किसी ने सत्य बात बताई ही नहीं । यदि बता दी होती तो इस विवाद के लिए न तो स्थान रहता और न आगे शोध की आवश्यकता रहती ।

जामनगर में दूसरा प्रयत्न

एक गुजराती-भाषी स्वामी ओंकारानन्द संन्यासी पौराणिक विचारों के थे, तथापि उनकी ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा थी और वे ऋषि-जीवनी तथा ऋषि

---

1. टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव के समय अर्थात् 1926 ई० में हेमशंकर जीवापुर रहते थे और उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द के दर्शन किए थे । - (ले०)

के वंश सम्बन्धित जानकारी भी रखते थे। वे टंकारा में मुझे बार-बार मिलते रहते थे। एक बार जामनगर आकर उन्होंने मुझे बताया कि जामनगर राज्य के खाखरा गाँव के त्रिवेदी ब्राह्मण ऋषि के कुटुम्बी हैं और उनके पास डोसाजी का पूरा वंशवृक्ष है।

मैंने इस विषय में खोज की तो पता चला कि खाखरा के सब ब्राह्मण राजकोट और जामनगर चले गये हैं। जामनगर में एक वृद्ध और विद्वान् पण्डित महाशंकर हैं। इन महाशंकर को जामनगर आर्यसमाज में यजुर्वेद पारायण यज्ञ में वेदपाठी के रूप में निमन्त्रित किया गया था, इसलिए उनसे मेरा परिचय था। मैं उनके घर पर जाकर मिला। इनके पास अपनी दस पीढ़ियों के वंशवृक्ष का चित्र शाखा और पत्रों में नाम के साथ विद्यमान था। मैंने उसकी प्रति कर ली, किन्तु जब इस वंशवृक्ष से जीवापुर या टंकारा के त्रिवेदी कुटुम्ब के नामों का मिलान किया तो कोई नाम नहीं मिला और न हरिभाई त्रिवेदी का नाम मिला। यह महाशंकर भाई भी औदीच्य सामवेदी ब्राह्मण हैं। दालभ्य गोत्र और पञ्च प्रवर के भी हैं। यह सब बातें ऋषि की जाति और गोत्र से मिलती हैं। किन्तु प्रतीत होता है कि ये दूर के कुटुम्बी हैं। इस प्रकार जानकारी प्राप्त करने का यह प्रयत्न भी निष्फल रहा।

एक और प्रयत्न

जीवापुर, मौरवी और स्वामी मेधार्थी की उक्त वंशावलियाँ अपूर्ण और अविश्वसनीय हैं। इसलिए इस दिशा में अधिक प्रयत्न व्यर्थ था। किन्तु हेमशंकर ने बताया कि जीवापुर के दरबार जमींदार जटुभा पथुभा जाड़ेजा के पास कुछ लिखा हुआ मिलेगा। जब जानकारी प्राप्त की तो पता लगा कि वे बड़ौदा (वड़ोदरा) चले गये हैं। जब मैं अपने कॉलेज की मौखिक परीक्षा लेने बड़ौदा (25 मई, 1984 को) गया तो उनसे मिला। उन्होंने बताया कि जीवापुर गाँव और खेती की जमीन का स्वामित्व तीन भागों में बाँटा हुआ था। एक भाग हमारे पूर्वजों के पास था। उसी बही में यह उल्लेख था कि करसनजी त्रिवेदी पहले

तो जमीन के प्रथम स्वामी के भाग में रहते थे, बाद में वे हमारे हिस्से वाले भाग में रहने आए। उन्होंने यह भी कहा कि जब मैं जीवापुर जाऊँगा तो आपको सूचित करूँगा और आप जीवापुर आएँगे तो यह लेख आपको बताऊँगा। इस बातचीत के पश्चात् वे जीवापुर नहीं आए हैं[1] और यह उल्लेख भी जीवापुर के करसनजी से सम्बन्धित होगा। इससे ऋषि जीवनी का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए हमारे लिए इसका अधिक उपयोग भी नहीं है। तथापि इसमें जीवापुर निवासी करसनजी के संवत् का उल्लेख मिल सकता है।

एक और अपूर्ण प्रयत्न

सौराष्ट्र और राजस्थान में एक बारोट (चारण या बारहट) कौम होती है। उसके पास राजाओं और अपने अन्य यजमानों की नामावलि की बही होती है। ये लोग प्रति वर्ष यजमानों से दक्षिणा लेने निकलते हैं और बही में नये जन्मे बच्चों के नाम भी लिखते रहते हैं। जब मैंने यह पता किया कि क्या ऋषि दयानन्द के कुटुम्ब का कोई बारोट है, तो पता चला कि 50-60 वर्ष पूर्व तक त्रिवेदियों के एक वृद्ध बारोट जीवापुर में पाटण (गुजरात) से आया करते थे। उनका नाम पथाभाई बारोट था। अधिक खोज करने पर

---

1. जटुभा दरबार ने मुझे आश्विन महिने की (नवरात्रि की) अष्टमी के दिन जीवापुर मिलने को कहा था। मैं जामनगर से गया, परन्तु वे नहीं आए।

प्रिय पाठक ! आप कल्पना कर सकते हैं कि शोध कार्य कितना दुष्कर होता है। प्रथम जानकारी प्राप्त करना, पता लगाना, व्यक्ति को ढूँढ़ना, मिलना, नोकरी से छूटियाँ लेकर सेंकडों किलोमीटर का प्रवास करना, धन का व्यय करना, जानकारी न मिलने पर एकाधिक बार प्रयत्न एवं प्रवास करना और यह सब करते हुए अपनी धून के धनी बने रहना !

मेरा यह अन्वेषण कार्य ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी तक मर्यादित था। परन्तु ऋषि जीवनी के शोध कार्य के लिए जीवन समर्पित करने वाले हुतात्मा पण्डित लेखराम तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की तपस्या, ऋषि-भक्ति और श्रद्धा को देखकर उन महानुभावों के चरणों में शीश नमन करता है। - (ले०)

ज्ञात हुआ कि उनका देहान्त हो गया है। उनके कोई पुत्र नहीं था, केवल एक पुत्री थी, जिसका विवाह सिद्धपुर में हुआ था।

इस जानकारी के आधार पर मैंने आर्यसमाज पाटण के मन्त्री को 26 नवम्बर, 1983 को इस विषय में खोज करने के लिए लिखा। पत्राचार होता रहा, किन्तु अब तक कुछ प्राप्त नहीं हुआ। यह कार्य कठिन है, क्योंकि प्रथमतः सम्बन्धित व्यक्ति को ढूँढ़ना पड़ता है। यदि व्यक्ति मिल जाए तो यह पता करना होता है कि उसके पास पुरानी बहियाँ हैं या नहीं। यदि हैं तो उनमें इच्छित वंशवृक्ष है या नहीं। ये सब जानकारियों के लिए कुछ अधिक समय चाहिए। मैं स्वयं अनुकूलता प्राप्त होने पर वहाँ जाकर यह कार्य करना चाहता था, किन्तु यदि कोई संस्था या निकटवर्ती व्यक्ति इस कार्य को करे तो अधिक सफलता मिल सकती है।

शोधकर्ताओं से निवेदन

ऋषि जीवनी पर शोधकार्य करने वाले विद्वानों से भी एक निवेदन है – सौराष्ट्र के धन–सम्पन्न लोग तीर्थयात्रा जरूर करते हैं। ऋषि के पिता करसनजी सम्पन्न थे और मूलशंकर के गृह–त्यागी होने तथा छोटे पुत्र वल्लभजी का छोटी आयु में देहान्त होने से व्यथित–हृदय करसनजी ने भी तीर्थयात्रा जरूर की होगी और अकाल में मृत्यु प्राप्त वल्लभजी का गया, प्रयाग में श्राद्ध भी जरूर किया होगा। देवेन्द्रनाथ ने तो यह भी वर्णन किया है कि करसनजी ने अपना अवशिष्ट जीवन तीर्थाटन में ही व्यतीत किया था। तीर्थस्थानों में प्रत्येक जाति के पृथक्–पृथक् पण्डें होते हैं और तीर्थ पर आने वाले अपने यजमानों का तथा परिवारों के सदस्यों के नाम भी अपनी बहियों में लिखते हैं। हरिद्वार, मथुरा आदि स्थानों में पण्डों के पास ऐसी नामावली और वंशावली प्राप्त होने की सम्भावना है। अतः आर्य जगत् के अन्वेषकों तथा विद्वानों तथा तीर्थस्थानों पर स्थित आर्यसमाजों से मेरा निवेदन है कि वे इस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न करें तो कुछ सफलता मिल सकती है।

पाद-टिप्पणी :

मेरा यह निवेदन का लेख 'आर्यजगत्' के 18 अगस्त, 1985 में पढ़कर आदित्यपाल सिंह (वर्तमान में आदित्यमुनि वानप्रस्थ) भोपाल का 'आर्यजगत्' के 8 सितम्बर, 1985 के 'पत्रों के दर्पण में' एक पत्र छपा था। जो इस विषय में उन्होंने अपने इस पत्र में जानकारी भेजी थी वह आगे शोधकर्ताओं को उपयोगी हो सके एतदर्थ निम्न प्रस्तुत है - (ले०)

ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी

इस लेखमाला के 'शोधकर्ताओं से निवेदन' शीर्षक अनुच्छेद के प्रसंग में निवेदन है कि मैं 7 मई को डॉ० वेदव्रत आलोक के साथ वाराणसी के दशाश्वमेध घाट पर जाकर गुजरातियों के पण्डे श्री अंजनी नन्दन मिश्र (कचौरी गली, पशुपति शिव मन्दिर के पास) से मिला था। उस समय उन्होंने बताया था कि यद्यपि उनके पास कई सौ वर्ष पुरानी बहियाँ हैं, जिन्हें उन्होंने पिछले 25 वर्षों से खोला तक नहीं है। तथापि उन्होंने अपने उपयोगार्थ पिछले 70-80 वर्षों का इंडेक्ष (Index) 25 हजार रुपये व्यय करके बनवा लिया है। ऐसी ही दो इंडेक्ष पुस्तिकाएँ निकाल कर उन्होंने हमें दिखाई जिनमें जीवापुर और टंकारा से आए व्यक्तियों के नाम अंकित थे, किन्तु वे संवत् 1960 वि० के आस-पास से शुरू होते थे। उन्होंने बताया कि यदि शुद्ध चैतन्य (स्वामी दयानन्द सरस्वती) के पिता या अन्य पूर्वज यहाँ आए हों तो उनका नाम उनकी बहियों में अवश्य मिल सकता है। लेकिन जिन बहियों को उन्होंने पिछले 25 वर्षों से खोला तक नहीं है, उन्हें निकालकर हमारे प्रश्नों का समाधान करवाना तत्काल सम्भव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि वाराणसी का कोई अनुसन्धान प्रेमी व्यक्ति श्री अंजनी नन्दन मिश्र से मिलकर इन बहियों को काफी समय लगाकर देखे और ऋषि दयानन्द के पूर्वजों के विषय में जानकारी प्राप्त कर, आर्यजगत् के सम्मुख रखें।

• • •

: 4 :

टंकारा के जीवापुर मुहल्ले से सम्बन्धित तथ्य

वर्तमान में आर्य विद्वानों के अनेक अनुसन्धान सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते रहते हैं । प्रायः विश्वविद्यालयों में भी अनुसन्धान कार्य सम्पन्न होते रहते हैं । पी-एच० डी० की उपाधि के लिए जो शोध ग्रन्थ तैयार किए जाते हैं, उनमें भी कभी-कभी शोधार्थी को वास्तविक तथ्य उपलब्ध न होने से अथवा किन्हीं अन्य कारणों से उनके शोध कार्यों में अनेक प्रकार की भूलें रह जाती हैं ।

अजमेर में आयोजित ऋषि निर्वाण शताब्दी के अवसर पर मैं जब पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक को मिला तो उन्होंने मुझे दो सन्देहास्पद बातों पर विशेष जानकारी प्राप्त करने को कहा -

1. टंकारा में जीवापुर मुहल्ले का नाम क्यों पडा ?
2. टंकारा और जीवापुर के शिवालयों में समानता का क्या कारण है ?

यहाँ मैं इन्हीं दो बातों पर विचार प्रस्तुत करता हूँ —

जीवापुर मुहल्ला : 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ में डॉ० भवानीलाल भारतीय ने राजस्थान के पाली नगर के जोधपुरिया वास आदि मुहल्लों के नामकरण का उदाहरण देकर यह स्थापना की है कि सम्भवतः जीवापुर से आकर टंकारा में बस जाने वाले औदीच्य ब्राह्मणों ने अपने पूर्व निवास के गाँव के अनुकरण पर टंकारा के इस मुहल्ले का नाम भी जीवापुर रख लिया होगा। (द्रष्टव्य : 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती', द्वितीय

भाग, परिशिष्ट 1, पृष्ठ 912) डॉ० भारतीय द्वारा दिया गया यह द्रष्टान्त निर्मूल है, जो जीवापुर के प्रसंग में यह नहीं घटता ।[1]

किसी प्रसिद्ध व्यक्ति की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए भी गाँव और मुहल्लों के नाम रखे जाते हैं अथवा गाँव और मुहल्लों को बसाने वालों के नाम पर भी नाम रखे जाते हैं । तदनुसार ही टंकारा के जीवापुर मुहल्ले का नामकरण किया गया है । तथ्य यह है कि मौरवी के दीवान के पद पर जीवा मेहता नामक एक प्रभावशाली व्यक्ति थे । जाति से वैश्य होने पर भी उन्होंने अनेक युद्ध किए थे । उन्हीं के नाम पर 1778 वि० में जीवापुर गाँव की स्थापना हुई थी और उसी समय वे टंकारा से मेघजी त्रिवेदी के पुत्र विश्रामजी को वहाँ ले गए थे, यह वर्णन हम इस ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में कर चुके हैं ।

द्वितीय – टंकारा गाँव में चारों ओर जो परकोटा (कोट अथवा क़िला) है, उसे संवत् 1774 वि० में जीवा मेहता ने ही बनवाया था ।[2] इस प्राचीर के निर्माण के समय वे टंकारा में कुछ दिन रहे थे । उसी समय उन्होंने जामनगर राज्य के पड़धरी गाँव के ठाकुर से युद्ध भी किया था । इन्हीं जीवा महेता ने अपनी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए मौरवी स्थित कुबेरनाथ

---

1. डॉ० भवानीलाल भारतीय की यह कल्पना निराधार, अनावश्यक तथा वदतोव्याघात है । क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने उसी ग्रन्थ के प्रथम भाग के पृष्ठ 88 पर ऋषि के पूर्वज का टंकारा से जीवापुर जाना लिखा है । – (ले०)

   डॉ० भारतीय ने वहाँ लिखा है – ''जीवा मेहता नामक एक श्रेष्ठी ने जब अपने नाम से जीवापुर नामक ग्राम बसाया तो उसने विश्रामजी को पर्याप्त भूमि दान में देकर स्व-स्थापित ग्राम में लाकर बसा दिया, किन्तु उसके भाई डोसाजी टंकारा मे ही रहे ।'' – (सं०)

2. 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादिनो निर्णय' (गुजराती पुस्तक), पृष्ठ 20 । विजयशंकर सम्पादित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' में पृष्ठ 82 पर संवत् 1778 लिखा है । – (ले०)

मन्दिर में एक वापी बनवाई थी, जो 'जीवा मेहता की वाव' के नाम से आज भी विद्यमान है। सारांश यह है कि मौरवी के इन्हीं दीवान जीवा मेहता ने जीवापुर की स्थापना की, टंकारा के परकोटे का निर्माण किया तथा पड़धरी की लड़ाई के समय जब वे टंकारा में रहे होंगे उसी समय इस मुहल्ले का नाम जीवापुर दिया गया। जिस समय जीवापुर गाँव की स्थापना भी नहीं हुई थी उससे पहले ही टंकारा के इस मुहल्ले का जीवापुर नामाभिधान हो गया था।

यहाँ एक और बात भी द्रष्टव्य है कि पूर्व समय में टंकारा की आबादी वर्तमान से प्रायः दुगुनी अर्थात् 8000 से भी अधिक थी। टंकारा के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस गाँव के आस-पास सात गाँव बसाए गये थे और वहाँ की अधिकांश आबादी टंकारा से ही गई थी। इसलिए जीवापुर या अन्य किसी गाँव से टंकारा में आने अथवा उस गाँव के आधार पर टंकारा के किसी मुहल्ले का नामकरण किये जाने की सम्भावना नहीं है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार जीवा मेहता के नाम से मौरवी में अनेक स्मृति चिह्न हैं, उसी प्रकार टंकारा के इस मुहल्ले का नाम उक्त मेहता जी के नाम पर ही किया गया।

पण्डित श्रीकृष्ण शर्मा का भ्रम

यहाँ एक और बात ध्यान करने योग्य है : पण्डित श्रीकृष्ण शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय' में पृष्ठ 11 पर जीवा मेहता को टंकारा का नगराध्यक्ष बताया है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जीवा मेहता टंकारा निवासी थे। किन्तु वस्तुतः वे टंकारा के नगराध्यक्ष या नगर सेठ नहीं थे। नगराध्यक्ष का पद वंश-परम्परा के अनुसार पिता के बड़े पुत्र को ही दिया जाता है, जबकि जीवा महेता और उनके पूर्वज इस टंकारा गाँव के रहने वाले न होकर मौरवी राज्य के चमनपुर ('चमनपर' बोला जाता है) गाँव के रहने वाले थे।

द्वितीय कारण यह भी है कि मौरवी राज्य मे महामन्त्री पद पर रहने वाला व्यक्ति कालान्तर में टंकारा का नगराध्यक्ष जैसे छोटे पद पर रहे, इसकी सम्भावना भी नहीं । श्रीकृष्ण शर्मा ने उपर्युक्त पुस्तक में और भी अनेक अप्रामाणिक और अविश्वसनीय बातें लिखी हैं । स्वामीजी का प्रारम्भिक जीवन वृत्तान्त अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध होता है । इसलिए उनके जीवन पर कार्य करने वाले अनेक विद्वान् श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा प्रदत्त सामग्री का उपयोग करने के कारण अनेक भूलें कर बैठते हैं ।

टंकारा और जीवापुर के शिवालय

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने मुझे इस बात का पता करने के लिए कहा था कि टंकारा और जीवापुर के शिवालय में समानता क्यों है ? इस विषय में यही अनुमान किया जा सकता है कि टंकारा स्थित ऋषि दयानन्द के पिता करसनजी और जीवापुर स्थित विश्रामजी के वंशज एक ही कुटुम्ब के थे । एक ही परिवार के लोगों में एक जैसे भवन या मन्दिर बनाने की प्रवृत्ति होती है । सम्भवतः जब एक मन्दिर निर्मित हुआ तो उसी के अनुकरण पर दूसरा भी बनाया गया । परन्तु यह कहना शक्य नहीं है कि इन दोनों में से कौन सा पहले बना ! क्योंकि इन मन्दिरों में कोई शिलालेख नहीं है ।

परन्तु इतना निश्चित है कि टंकारा का शिव मन्दिर ऋषि के पिता करसनजी त्रिवेदी ने बनाया था और मौरवी नरेश पृथ्वीराज ने उसकी पूजा के लिए 1887 वि० पौष शुक्ला चतुर्दशी बुधवार को एक दान पत्र लिखकर 12 बीघा जमीन प्रदान की थी । इस आशय का एक लेख मिलता है । मन्दिर सम्भवतः इस तिथि से कुछ दिन पूर्व बना होगा, ऐसा अनुमान होता है । परन्तु जीवापुर के शिवालय के निर्माण की तिथि विषयक कोई सूचना नहीं मिलती ।

मैं कई बार जीवापुर हो आया हूँ, परन्तु इस विषय पर लिखने से पूर्व 4 नवम्बर, 1984 को मैं वहाँ विशेष रूप से गया । सूक्ष्म निरीक्षण से यह

पता लगा कि दोनों शिवालयों की रचना समान होने पर भी टंकारा के मन्दिर से जीवापुर का मन्दिर कुछ छोटा है । टंकारा के मन्दिर का फर्श जमीन से समानान्तर है, जबकि जीवापुर का मन्दिर जमीन से छः फुट ऊँचा उठाकर बनाया गया है ।

एक निवेदन : जीवापुर के शिवालय की चर्चा के प्रसंग में यह निवेदन आवश्यक है कि स्वामी मेधार्थी ने जीवापुर को ऋषि दयानन्द का जन्मस्थान बताया है। हम एतद्-विषयक भ्रम का निवारण कर आए हैं। (द्रष्टव्य : प्रकरण 1) किन्तु एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है कि जीवापुर के शिवालय की दक्षिण दिशा में बाहर की दीवार पर स्वामी मेधार्थी ने एक शिलालेख लगवाया है, जिसमें इस बात का उल्लेख है कि मूलशंकर ने इसी शिवालय में शिवरात्रि की थी । यदि 50-100 वर्ष बाद कोई व्यक्ति इस शिलालेख को देखेगा तो वह यही धारणा बना लेगा कि मूलशंकर की उपासना का यही वास्तविक स्थान रहा होगा । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि इस मिथ्या शिलालेख को वहाँ से अविलम्ब हटाया जाए । स्वामी दयानन्द की उत्तराधिकारिणी 'परोपकारिणी सभा' से हमारा इस कार्य हेतु निवेदन है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि जीवापुर में इस शिवालय के सामने मेधार्थी ने एक यज्ञशाला का कमरा बनाया है तथा उसमें भी एक शिलालेख लगाकर जीवापुर को ही स्वामी दयानन्द की जन्मभूमि बताने का दुष्प्रचार किया है । इस यज्ञशाला में यज्ञवेदी भी नहीं है और शिवालय के पुजारी ने इसे पशुओं की घास का गोदाम बना रखा है । यह शिलालेख भी भविष्य में भ्रम का कारण बन सकता है ।

टंकारा में शिलालेख

जिस प्रकार पुष्कर के ब्रह्मा-मन्दिर में स्वामी दयानन्द के निवास की स्मृति में शिलालेख लगाया गया है, वैसे मूलशंकर की शिवरात्रि उपासना की ऐतिहासिकता को दृष्टि में रखकर टंकारा के कुबेरनाथ महादेव के शिवालय में

भी एक शिलालेख लगाना चाहिए, जिससे भावी पीढ़ियों को जन्मस्थान और शिवालय के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका अथवा भ्रम न रहे। इस हेतु मैंने अपने पिताजी की स्मृति के साथ एक शिलालेख (1985 ई० में) लगवाया था। उस समय गाँव के लोगों ने इस भ्रम से कि शिवालय को आर्यसमाज और स्मारक ट्रस्ट अपने अधिकार में ले रहे हैं, उस शिलालेख को तोड़कर फेंक दिया। पश्चात् स्मारक के ट्रस्टी और व्यवस्थापक ने कोई ध्यान नहीं दिया।[1]

• • •

1. सम्प्रति टंकारा के इस कुबेरनाथ महादेव के मन्दिर के पास उसको इंगित करता हुआ एक बोर्ड (सूचना-पट्ट) रक्खा गया है, जिस पर 'महर्षि दयानन्द मूलशंकर बोध शिवरात्रि शिवमन्दिर' - ये शब्द अंकित किए गए हैं। - (सं०)

: 5 :

शिवरात्रि का उपासना मन्दिर

देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार मूलशंकर ने शिवरात्रि की उपासना वांकानेर राज्य की सीमा स्थित जड़ेश्वर महादेव के मन्दिर में की थी ! इसकी पुष्टि में उन्होंने (1) ऋषि की आत्मकथा (2) पोपटलाल की बुआ वेणीबाई का साक्ष्य और (3) जड़ेश्वर की मूर्ति की विवेचना की है । यहाँ इन तीनों की समीक्षा प्रस्तुत की जाती है -

1. ऋषि की आत्मकथा

जब हम ऋषि की (1) लिखित और (2) पूना-व्याख्यान में कथित आत्मकथा को देखते हैं तो हमें निम्न विवरण प्राप्त होता है —

1. **"और जब चतुर्दशी की साम हुई तब बड़े-बड़े बस्ती के रईस अपने पुत्रों सहित मन्दिरों में जागरण करने को गये । वहाँ मैं भी अपने पिता के साथ गया और प्रथम प्रहर की पूजा भी करी, दूसरे प्रहर की पूजा करके पुजारी लोग बाहर निकलके सो गये । मैंने प्रथम से सुन रक्खा था कि सोने से शिवरात्रि का फल नहीं होता है । इसलिये अपनी आँखों में जल के छींटे मार के जागता रहा ।"**[1]

---

1. दयानन्द सरस्वती की 'आत्मकथा', सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय, पृष्ठ 7-8 । वैदिक पुस्तकालय प्रकाशित इस निर्वाण शताब्दी संस्करण में मूल पाण्डुलिपि, उसकी मुद्रित देवनागरी लिपि और 'थियोसोफिस्ट' में प्रकाशित आंग्ल अनुवाद दिया गया है । देवेन्द्र बाबू को कई प्रयत्न करने पर भी आत्मकथा की मूल प्रति प्राप्त नहीं हुई थी । उन्होंने इस बात का दुःख व्यक्त भी किया है । - (ले०)

2. पूना-व्याख्यान ('उपदेश मंजरी') का पाठ इस प्रकार है – **"मेरे गाँव में गाँव से बाहर एक बड़ा देवालय है । उसमें शिवरात्रि के दिन रात में बहुत लोग जाते थे और पूजा-अर्चना करते थे । मेरे पिता, मैं और भी बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे । पहले प्रहर की पूजा पूरी कर ली । दूसरे प्रहर की भी पूजा हो गई । अनन्तर बारह बजने पर धीरे धीरे लोग जहाँ के तहाँ ही झपकी लेने लगे ।"**[1]

फिर आगे चूहे की घटना घटी । पिता को जगाया । जब पिता से समाधान न हुआ तो बाद में मूलशंकर अपने घर चले गये और जाकर माता से भोजन माँगा । माता ने भोजन दिया और उसे खाकर बाद में ऋषि लिखते हैं – **"एक बजे पर सो गया"** । (लिखित 'आत्मकथा', पृष्ठ 8)

देवेन्द्रनाथ की तीन कल्पना

ऋषि के उपर्युक्त शब्दों पर विचार करने से पूर्व देवेन्द्रनाथ के तर्क पर विचार करना उचित है । वे लिखते हैं – "दयानन्द जिस मन्दिर में व्रत के उद्यापन के लिए गए थे वह मन्दिर उनके शहर के बाहर था, बड़ा था और उस मन्दिर के निकट कोई बरामदा आदि आश्रय का स्थान नहीं था । अतः मन्दिर के पुजारी और मन्दिर में आये हुए व्रतधारियों के सोने के लिए स्थान कहाँ से आया ? कुबेरनाथजी (टंकारा) का मन्दिर इन लक्षणों से युक्त नहीं है, क्योंकि वह शहर से बाहर नहीं है, बल्कि भीतर है । उसके पार्श्व में वा उसके निकट कोई ऐसा आश्रय-स्थान नहीं है जिसमें दो से अधिक मनुष्यों के सोने की जगह हो ।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 54, पाद-टिप्पणी)

---

1. 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', सम्पादक : पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक, पृष्ठ 434, श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट, वितरक : रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, प्रथम संस्करण, 1988 ई० – (सं०)

देवेन्द्र बाबू के तर्क के अनुसार शिवालय का नगर से बाहर होना, बड़ा होना और व्रतधारियों के सोने का आश्रय-स्थान होना – ये तीनों बातें टंकारा स्थित कुबेरनाथ के मन्दिर में नहीं हैं और जड़ेश्वर[1] के मन्दिर में हैं। इसलिए उन्होंने जड़ेश्वर मन्दिर को ही मूलशंकर द्वारा की गई शिवरात्रि की उपासना का स्थान बताया है। अब हम नगर से बाहर होना, बड़ा होना और आश्रय-स्थान रहने विषयक बातों की समीक्षा करेंगे।

मन्दिर का नगर से बाहर होना : देवेन्द्र बाबू ने ऊपर उद्धृत वाक्यों में जो लिखा है कि कुबेरनाथ मन्दिर शहर से बाहर नहीं बल्कि भीतर है, इस पर हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर देवेन्द्रनाथ के ही अन्यत्र उद्धृत वाक्यों को प्रस्तुत करते हैं –

---

1. 'जड़ेश्वर' को पौराणिक देवता शंकर या महादेव का नाम माना जाता है। गुजराती में एक क्रियापद है – 'जडवुं', जिसका अर्थ होता है – मिलना, हाथ आना। वांकानेर से लगभग दस किलोमीटर की दूरी पर 'रतन टेकरी' पर स्थित इस मन्दिर को 'जड़ेश्वर' इसलिए भी कहा गया कि उसी से सम्बन्धित एक प्रचलित पौराणिक कथा अनुसार यह 'स्वयम्भू' महादेव उस जंगल में से मिले ('जड्या') थे या हाथ आए थे! इस शिवालय की स्थापना के पीछे जामनगर के जाम रावल, 'त्रिकालदर्शी' पञ्जु भट्ट, एक सुनार, उस सुनार की गाय, गोपालक इत्यादि को लेकर एक मिथ्या कथा भी प्रचलित है।

   दीवान बहादुर हरबिलास शारदा ने ऋषि के अंग्रेजी जीवन-चरित 'लाइफ़ ऑफ़ दयानन्द सरस्वती' में पृष्ठ 4 (1968 ई० संस्करण) पर मूलशंकर ने शिवरात्रि की उपासना जड़ेश्वर के मन्दिर में की थी ऐसा लिखा है। इसी पृष्ठ पर दी गई एक पाद-टिप्पणी में हरबिलास शारदा ने लिखा है – "Jhadeshwar temple was made by Vithal Raodeoji in Samvat 1869. Seth Sundershivji built the western part of the temple in 1873." अर्थात् "जड़ेश्वर के मन्दिर का निर्माण विठल रावदेवजी ने 1869 वि० में किया था और इस मन्दिर के पश्चिमी भाग का निर्माण सेठ सुन्दरशिवजी ने 1873 वि० में किया था।" – (सं०)

"करसनजी ने टंकारा के बाहर थोड़ी-सी दूरी पर शिवजी का एक मन्दिर भी बनवाया था जिसका नाम कुबेरनाथजी का मन्दिर है। ... यह मन्दिर टंकारा के राजकोट-द्वार से बाहर निकलते ही बाईं ओर डेमी नदी के घाट पर दृष्टिगोचर होता है।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', परिशिष्ट 1, पृष्ठ 638)

यही वाक्य देवेन्द्र बाबू के 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' (गुजराती अनुवाद) ग्रन्थ में भी है। (पृष्ठ 70) अन्यत्र भी उन्होंने लिखा था - "उन्होंने (करसनजी ने) डेमी नदी के तट पर एक शिव मन्दिर भी बनवाया था।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 46) देवेन्द्रनाथ के उपर्युक्त परस्पर विरुद्ध वाक्यों के विषय में किसी सम्पादक अथवा शोधकर्ता ने कुछ नहीं लिखा, यह आश्चर्य की बात है।

विचार करने से प्रथम वाक्य का पाठ भी शुद्ध उद्धृत नहीं लगता और वाक्यों का पूर्वापर सम्बन्ध भी मेल नहीं खाता।[1] अतः बहुत अधिक विस्तार में न जाकर भी हम यही कहेंगे कि कुबेरनाथ का मन्दिर टंकारा की सीमा

---

1. 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' ग्रन्थ में प्रारम्भिक जीवनी के प्रकरण में एवं परिशिष्ट 1 में व्यक्ति और गाँवों के नामों में अशुद्धि तथा मुद्रण दोषों की भरमार है। अतः यहाँ पर 'भीतर' के स्थान पर 'बाहर' और 'बाहर' के स्थान पर 'भीतर' छपा प्रतीत होता है। यहाँ प्रसंगानुकूल कुछ जानकारी प्रस्तुत करता हूँ - दीर्घकालोपरान्त 'विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द' (दिल्ली) द्वारा स्वामी जगदीश्वरानन्द के सम्पादन में देवेन्द्रनाथ रचित इस ग्रन्थ के प्रकाशन की विज्ञप्ति पढकर मैंने एक सुदीर्घ शुद्धि-पत्रक बनाकर 'वानप्रस्थ साधक आश्रम' (रोजड़) के शिलान्यास कार्यक्रम पर स्वामी जगदीश्वरानन्द को प्रत्यक्ष रूप में दिया था। परन्तु खेद की बात है कि उन्होंने ग्रन्थ-सम्पादन में उसका कुछ भी उपयोग नहीं किया। परिणामतः इस ग्रन्थ के महर्षि दयानन्द बोधरात्री 2050 वि० के प्रथम संस्करण में पूर्ववत् अशुद्ध ही छपा। पश्चात् मैंने प्रकाशक का ध्यान आकृष्ट करके दूसरी बार शुद्धिपत्रक भेजा। अतः अजयकुमार विजयकुमार ने इस ग्रन्थ के 2001 ई० के संस्करण में अपने 'प्रकाशकीय' (पृष्ठ 22) में मेरे साभार निर्देश के साथ ये नाम प्रायः शुद्ध रूप में छापे हैं। अस्तु। - (ले०)

के बाहर है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। इसलिए ऋषि द्वारा प्रयुक्त 'शहर से बाहर' शब्दों से टंकारा का यही मन्दिर सिद्ध होता है।

'शहर से बाहर' शब्द से जड़ेश्वर के मन्दिर का ग्रहण कभी नहीं हो सकता। क्योंकि यह मन्दिर टंकारा से छः मील दूरी पर है। जंगल में होने से इसे नगर के बाहर भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए 'मेरे गाँव में गाँव से बाहर' वाक्यांश का प्रयोग जड़ेश्वर के मन्दिर के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता।

बड़ा देवालय (शिवालय) : 'बड़ा' शब्द पर विचार करने से पूर्व यह लिखना आवश्यक है कि शिवालय का वर्णन पाण्डुलिपि में प्रकाशित आत्मकथा में तो नहीं है, किन्तु पूना-व्याख्यान में है। ये व्याख्यान स्वामीजी ने हिन्दी में दिए थे, जिन्हें मराठी लेखकों ने सर्वप्रथम मराठी में ही प्रकाशित किया। अब पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के अनेक वर्षों के प्रयत्न से मराठी के मूल सभी व्याख्यान प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु यह 'बड़ा' शब्द ऋषि द्वारा प्रयुक्त किया गया था या लेखक की ओर से जुड गया या अनुवाद में आ गया अथवा मुद्रण दोष से प्रविष्ट हो गया - इस पर कुछ कहना सम्भव नहीं। इसलिए पाण्डुलिपि में प्रकाशित आत्मकथा को ही अधिक प्रामाणिक मानकर हम यहाँ यह वाक्य उद्धृत कर रहे हैं।

(क) आत्मकथा : "पुजारी लोग बाहर निकलके सो गये।"

यदि जड़ेश्वर के मन्दिर में गए होते तो उस मन्दिर के विशाल गर्भगृह में ही लोग बैठे-बैठे सो जाते। बाहर निकलने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इससे सिद्ध होता है कि वह मन्दिर टंकारा के बाहर का ही है। उस मन्दिर में अधिक लोगों का समावेश न होने के कारण बाहर निकल कर सोये, क्योंकि बाहर का प्रांगण बड़ा है।

(ख) द्वितीय : लिखित आत्मकथा के अनुसार - **"बस्ती के रईस अपने पुत्रों सहित मन्दिरों में जागरण करने को गये। वहाँ मैं भी**

अपने पिता के साथ गया ।'' यहाँ 'मन्दिरों' शब्द का बहुवचन में प्रयोग पाण्डुलिपि में भी मिलता है। इससे यह भाव भी प्रकट हो सकता है कि सब लोग टंकारा के भिन्न-भिन्न मन्दिरों में गए थे, उसी प्रकार मूलशंकर पिताजी के साथ स्वनिर्मित कुबेरनाथ के मन्दिर में गया था। त्रिवेदी परिवार के लोग वहीं इकट्ठे हुए होंगे । इससे यहाँ इतनी भीड़ नहीं हुई होगी कि शिवालय में समा न पाएँ ।

(ग) आश्रय-स्थान : देवेन्द्रनाथ का तीसरा हेतु यह है कि टंकारा के शिवालय में सोने की जगह नहीं है। वस्तुतः टंकारा के शिवालय का प्रांगण इतना छोटा तो नहीं है कि जहाँ लोग समा न सकें। एक बात यह भी है कि लोग वहाँ सोने के लिए नहीं गए थे । वहाँ तो जागरण करने वाले व्रतधारी ही गए थे । यह तो सम्भव है कि शिवरात्रि के दिन चार प्रहर में चार बार पूजा होती है। इस काल में कुछ लोग बैठे-बैठे जप करते होंगे, कुछ निद्रावश झोंके खाते होंगे, तो कुछ अन्य लोग सो भी गए होंगे । इसलिए केवल सोने के लिए किसी आश्रय-स्थान की आवश्यकता ही नहीं थी । एक बात यह है कि केवल सोने के लिए छः मील दूर जड़ेश्वर के मन्दिर में लोग जाएँगे ही क्यों ?

(घ) चूहे के बिल : उपर्युक्त तीनों बातों का परिहार करने के पश्चात् एक और बात भी द्रष्टव्य है । जड़ेश्वर का मन्दिर बड़ा जरूर है, सुन्दर और पक्का भी है तथा उसके आगे का चौक बहुत दूर तक पक्का है, जबकि स्वामीजी की 'पूना-प्रवचन' में कथित आत्मकथा में कहा है - **''मन्दिर में बिल से चूहे बाहर निकले ।''** जड़ेश्वर के सुदृढ, पक्के मन्दिर में चूहे के बिल हो ही नहीं सकते और आगे का भाग बहुत दूर तक पक्का होने से वहाँ बिल होना सम्भव नहीं । इसके विपरीत टंकारा का शिवालय बहुत पक्का न होने से चूहे के बिलों की सम्भावना यहाँ हो सकती है। इस विचार से भी जड़ेश्वर का मन्दिर मूलशंकर की शिवरात्रि वाली उपासना का स्थान नहीं हो सकता है ।

2. वेणीबाई का वचन

देवेन्द्रनाथ ने जड़ेश्वर मन्दिर ही मूलशंकर का उपासना स्थल था – इस बात की पुष्टि के लिए पोपटलाल की बुआ वेणीबाई के निम्नलिखित वचन उद्धृत किए हैं –

"हमारे पिता और भाई शिवरात्रि को कभी कुबेरनाथजी के मन्दिर में और कभी जड़ेश्वर के मन्दिर में जाया करते थे ।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 54, पाद-टिप्पणी)

प्रथम : तो वेणीबाई का 'कभी' शब्द सन्देहास्पद है । इससे यह पुष्ट नहीं होता कि उस वर्ष की शिवरात्रि-उपासना मूलशंकर ने जड़ेश्वर मन्दिर में की थी ।

द्वितीय : बात यह है कि ब्राह्मण लोग जड़ेश्वर के मन्दिर में श्रावण मास में जाते हैं और पूरे एक मास तक वहाँ रहकर पूजा करते हैं । शिवरात्रि के दिन प्रायः वहाँ नहीं जाते । ऐसा मेरा और टंकारा के अन्य निवासियों का अनुभव है ।

3. जड़ेश्वर की मूर्ति की कल्पना

देवेन्द्रनाथ ने ऋषि की आत्मकथा का आधार लेकर एक और तीसरी कल्पना की है कि जब शिव-प्रतिमा पर चूहे को दौड़ता देखकर मूलशंकर सोचने लगा कि क्या यह वही वृषारूढ देवता है जो मेरे सामने उपस्थित है ? जड़ेश्वर में शिवजी की एक चांदी की मूर्ति है जिसे श्रावण मास या शिवरात्रि के दिन शिव-पिण्डी के पास रखा जाता है । इसी मूर्ति के सामने बैठकर मूलशंकर ने "जो मेरे सामने उपस्थित है" (वही, पृष्ठ 55, पाद-टिप्पणी) – जैसे भाव व्यक्त किए होंगे । ऋषि का लेख भी ऐसा ही है । इससे जड़ेश्वर मन्दिर की सिद्धि होती है ।

यह देवेन्द्रनाथ की कल्पना है । किन्तु वास्तव में आत्मकथा में ऐसे शब्द

हैं ही नहीं । वहाँ तो इस प्रकार लिखा गया है —

"जिसकी मैंने कथा सुनी थी वही यह महादेव है या अन्य कोई ... इत्यादि प्रकार का महादेव मैंने कथा में सुना था, तब पिताजी को जगाके मैंने पूछा कि यह कथा का महादेव हैं या कोई दूसरा ।" (पृष्ठ 8)

ऋषि के उपर्युक्त वाक्यों से यही भाव निकलता है कि उन्होंने उस महादेव की कल्पना कथा में सुन कर ही की थी । ऋषि की इन पंक्तियों में यह कथन तीन बार आया है और पूना-व्याख्यान में भी कथा में सुनने का दो बार उल्लेख है । इन वाक्यों से यह नहीं झलकता कि शिवलिंग से भिन्न कोई अन्य मूर्ति मूलशंकर से समक्ष उपस्थित थी और न इस प्रकार का भाव ही निकलता है । अतः जड़ेश्वर की चांदी की मूर्ति के सामने बैठने की कल्पना करना निराधार ही है ।

स्वयं देवेन्द्र बाबू के शब्द भी वदतोव्याघात रूप में प्राप्त होते हैं । यथा - "जिस महादेव की शान्त, पवित्र मूर्ति की कथा, जिस महादेव के प्रचण्ड पाशुपतास्त्र की कथा ... (मूलशंकर ने) गत दिवस व्रत के वृत्तान्त में सुनी थी" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 55) - देवेन्द्रनाथ के इन शब्दों से ही चांदी की मूर्ति की कल्पना स्वतः ही खण्डित हो जाती है ।

दो लिखित प्रमाण

ऋषि की आत्मकथा के उपर्युक्त शब्दों से ही देवेन्द्रनाथ की कल्पना का निरसन हो जाता है । इनके अतिरिक्त अन्य दो लिखित प्रमाणों से भी यह बात निर्मूल सिद्ध होती है । यथा -

प्रथम प्रमाण : यह चांदी की मूर्ति जामनगर के नरेश जाम विभाजी ने बनवाकर जड़ेश्वर के मन्दिर में भेंट की है । इसका वर्णन स्वयं देवेन्द्रनाथ ने किया है । ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 55, पाद-टिप्पणी)

कर्नल जे० डबल्यु० वोटसन् रचित 'काठियावाड़'[1] के अनुसार जाम विभाजी का राज्यारोहण 1852 ई० में हुआ था। ('काठियावाड़ सर्वसंग्रह', पृष्ठ 465, प्रकाशन 1887 ई०) और ऋषि का जन्म 1825 ई० में तथा शिवरात्रि की घटना 1837 ई० में घटी थी। इस समय यह चांदी की मूर्ति बनी ही नहीं थी। इसलिए देवेन्द्रनाथ की यह कल्पना निर्मूल सिद्ध होती है।

दूसरा प्रमाण : मूर्ति कब निर्माण की गई इसकी जानकारी प्राप्त करने पर मूर्ति के नीचे अंकित ये शब्द लिखित रूप में हमें प्राप्त होते हैं —

"श्री जड़ेश्वर महाराज श्री राज भाईयु राजजाम श्री विभाजी संस्थान नवानगर सं० 1918 भादरवा सुदी 8 मोरू डी० रू० छ०" ।[2] (वही)

अर्थात् जामनगर नरेश श्री विभाजी ने 1918 वि० भाद्रपद शुक्ल अष्टमी के दिन छः रुपिया व्यय करके यह मूर्ति निर्माण करवाई है।

मूर्ति के नीचे अंकित उक्त लेख से विदित होता है कि मूलशंकर के जन्म संवत् 1881 तथा शिवरात्री की घटना 1893 या 1894 वि० के अनन्तर 25 वर्ष बाद अर्थात् 1918 वि० में बनी थी। इसलिए मूलशंकर ने जड़ेश्वर

---

1. राजकोट के तत्कालीन पोलिटिकल एजन्ट कर्नल जे० डबल्यु० वॉटसन् (Colonel J.W. Watson) के 1886 ई० में प्रकाशित 'काठियावाड़ गज़ेटियर' का गुजरात के प्रसिद्ध सुधारक व साहित्यकार नर्मदाशंकर ('नर्मद') द्वारा किया गया गुजराती अनुवाद 'काठियावाड़ सर्वसंग्रह' शीर्षक 1887 ई० में प्रकाशित हुआ था। पढ़ने को मिला है कि सुरेश पारेख, रायजी बाग, जूनागढ़ के द्वारा इस गुजराती ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन 2005 ई० में किया गया है। - (सं०)

2. अनुमान है कि यह 'मोरू' शब्द (गुजराती में 'महोरुं') यहाँ मोहरा या मोहड़ा अर्थात् किसी वस्तु के ऊपर के या आगे के भाग के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'डी० रू० छ०' से रुपये छः अभिप्रेत हो सकता है। यहाँ 'डी०' नवानगर (जामनगर) राज्य की तत्कालीन स्थानिक मुद्रा (सिक्का या मुहर) 'दोकड़ा' का द्योतक हो सकता है। - (सं०)

में चांदी की मूर्ति को सामने उपस्थित देखकर शिव की कल्पना की – यह देवेन्द्रनाथ का तर्क निराधार है ।

आत्मकथा अनुसार अन्य विचार

देवेन्द्र बाबू के तर्कों का निवारण करने के पश्चात् हम ऋषि की आत्मकथा के प्रमाण से और अन्य युक्तियों से यह सिद्ध करेंगे कि मूलशंकर ने शिवरात्रि की उपासना टंकारा के कुबेरनाथ के मन्दिर में की थी, न कि जड़ेश्वर के मन्दिर में ।

प्रथम : ''मेरे गाँव में गाँव से बाहर'' और **''पुजारी लोग बाहर निकलके सो गए''** – ऋषि के इन वाक्यों की चर्चा हम कर चुके हैं । इनमें टंकारा स्थित मन्दिर का ही ग्रहण होता है ।

दूसरा : आत्मकथा के अनुसार **''दूसरे प्रहर की भी पूजा हो गई । अनन्तर बारह बजने पर ... अपनी आँखों में जल के छींटे मारकर जगता रहा ... पिता से पूछा कि मैं घर को जाता हूँ ... खाकर एक बजे पर सो गया ।''** दूसरा प्रहर बारह बजे पूरा होता है । उसके बाद पूजा-विधि में बीता समय पूजा के बाद तुरन्त नहीं किन्तु सब लोग धीरे-धीरे सोए यह अवधि, सब के सोने के बाद स्वयं के नींद से बचने के लिए कितनी ही बार जल के छींटे मारने का समय, उसके बाद चूहे की घटना का घटित होना, घटना को देखना, उस पर विचार-मन्थन चलना, पुनः पिता को जगाना, उनसे इस घटना के सम्बन्ध में शंका करना, पिता से वार्तालाप करना, घर जाने की तैयारी, घर पहुँचना, माता से बात करना, तत्पश्चात् भोजन करके एक बजे सो जाना ।

अब सोचने की बात है कि उपर्युक्त सब क्रियाओं में समय लगाने के पश्चात् क्या जड़ेश्वर से छः मील दूर टंकारा आना केवल एक घण्टे में सम्भव है ? कदापि नहीं । क्योंकि पैदल आने में ही दो घण्टे लग जाते हैं । घोड़े से चलकर आना भी सम्भव नहीं । यह सब प्रसंग तो टंकारा स्थित

कुबेरनाथ के मन्दिर से चलकर घर आने से ही मेल खाता है। अतः जड़ेश्वर के मन्दिर में शिवरात्रि की पूजा असम्भव है।

तीसरा : पिताजी कट्टर शिव-भक्त थे। वे व्रत कराने में भी कड़े थे और व्रत की अवधि में भोजन करने के सख्त विरुद्ध थे। इसलिए उनकी दृष्टि में तो मूलशंकर को भेजकर कुछ घंटे सोने के लिए ही कहने की बात थी। जड़ेश्वर में तो सोने की व्यवस्था भी सम्भव थी। यदि वे चाहते तो पुत्र को भी वहीं सुला देते और प्रातःकाल होने पर अपने साथ ही उसे टंकारा घर ले आते। किन्तु ऐसा नहीं हो सका। इस दृष्टि से भी जड़ेश्वर की कल्पना युक्तिसंगत नहीं है।

चौथा : मूलशंकर के इस वाक्य से कि "**मैं घर को जाता हूँ**" यह ध्वनि निकलती है कि शायद अकेले ही घर जाने के लिए वे तैयार हुए, परन्तु पिताजी ने सिपाही साथ ले जाने को कहा। पिता अपने पुत्र की प्रकृति को जानते ही होंगे कि बारह वर्ष के बालक को डर लगेगा और जड़ेश्वर से छः मील दूर रात्रि के अन्धकार में टंकारा आने की तो कल्पना भी नहीं हो सकती; क्योंकि गृह-त्याग के बाद 21 वर्ष की आयु में भी सायला की घटना के प्रसंग में स्वामीजी कहते हैं - "**रात्रि में एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, उस (वृक्ष) पर पक्षी घू-घू करने लगा। उसे सुनकर भूत का भय मेरे मन में उत्पन्न हुआ और मैं वापस मठ में आ गया।**" ('ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', पृष्ठ 437) इस बात से भी बालक मूलशंकर का जड़ेश्वर से आधी रात के समय अकेले टंकारा आने के लिए तैयार होना अकल्पनीय है।[1]

पांचवाँ : जड़ेश्वर से टंकारा आने के लिए जल से परिपूर्ण नदी को पार करना पड़ता था। मार्ग में घना जंगल था और जंगल में हिंसक पशुओं का

---

1. यही युक्ति पण्डित लेखराम ने प्रयुक्त करते हुए लिखा है - "न जड़ेश्वर का मन्दिर वहाँ (टंकारा) से इतना समीप है कि एक लड़का दो बजे रात के वहाँ से घर को सोने के लिए चला आए।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र', पृष्ठ 20) - (सं०)

डर था। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की अन्धकारपूर्ण मध्य रात्रि के भयंकर समय में अश्वारोही होकर सिपाही के साथ आना भी सम्भव नहीं था और पिता के अपने पुत्र की मानसिक प्रकृति से सुपरिचित होने के कारण केवल सोने के लिए ही टंकारा आने की आज्ञा दे दी हो, यह भी सम्भव नहीं है।

छट्ठा : अन्तिम बात पर पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने लिखा है – "करसनजी कुबेरनाथ महादेव के भक्त थे। अतः उन्होंने टंकारा में भी उसी के सर्वथा अनुरूप कुबेरनाथ का मन्दिर बनाया। अपना स्व-निर्मित स्व-इष्टदेव का देवालय टंकारा में विद्यमान होते हुए टंकारा से 7-8 मील दूर जड़ेश्वर के देवालय में जाना युक्ति संगत नहीं है। अतः शिवरात्रि में इसी देवालय में ही शिवार्चना की थी।"[1]

सातवाँ : पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक की पंक्तियों के साथ में मैं इतना अधिक जोड़ दूँ कि यह कुबेरनाथ का मन्दिर शिवरात्रि की घटना से 6-7 वर्ष पूर्व ही बना था। और ऐसे विशिष्ट अवसर पर उसका उपयोग न कर जड़ेश्वर जाने की बात सम्भव नहीं है।

जड़ेश्वर का मन्दिर

इस प्रसंग में कुछ और चर्चा आवश्यक है। जड़ेश्वर का मन्दिर जंगल में है। इसकी स्थापना 1869 वि० में हुई और मूलशंकर का शिवरात्रि व्रत 1893 या 1894 वि० में हुआ। इस प्रसंग में देवेन्द्रनाथ लिखते हैं – "उससे पहले जड़ेश्वर का स्थान जंगल से पूर्ण रहा हो, परन्तु उस (व्रत के) समय नहीं था।"[2] देवेन्द्र बाबू का यह तर्क ठीक नहीं, क्योंकि जड़ेश्वर मन्दिर एक टेकरी (छोटी पहाड़ी) पर है। इसके अग़ल-बग़ल को यदि साफ किया हो तो भी नीचे का भाग और रास्ता तो जंगल से पूर्ण ही था। श्रावण के द्वितीय सोमवार को इस मन्दिर में मेला लगता है और पास-पड़ौस के गाँव से, टंकारा से भी

---

1. 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', पृष्ठ 434, पाद-टिप्पणी। -(सं०)
2. 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 55, पाद-टिप्पणी। -(सं०)

अनेक लोग इसमें सम्मिलित होते हैं । जब सड़क नहीं बनी थी और बस की सुविधा नहीं थी उस समय पैदल या बैलगाड़ी से जाना पड़ता था। इन पंक्तियों का लेखक भी दशाधिक बार पैदल या बैलगाड़ी से जा चुका है । जब 40 वर्ष पूर्व ही मन्दिर के मार्ग में और वहाँ के नीचे के भाग में घने जंगल थे तथा बड़े-बड़े पत्रों वाले पलाश आदि के वृक्ष थे और उस स्थिति में टेढ़ी पगडण्डियों के कारण थोड़ी दूर वाला या खड़ा व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता था, तो फिर यह कहना कि मूलशंकर के समय यह रास्ता निष्कंटक था, प्रत्यक्ष के विरुद्ध है और युक्तिसंगत भी नहीं है; क्योंकि उस समय तो मन्दिर को बने 25 वर्ष भी नहीं हुए थे ।

दूसरी बात : जड़ेश्वर का मन्दिर जंगल से घिरा हुआ था और उसमें हिंसक पशु भी रहते थे । इसका एक प्रमाण मन्दिर के महन्त के शब्दों में ही प्रस्तुत करता हूँ । एक बार टंकारा के ऋषि मेले में महात्मा प्रभु आश्रित आए थे । उनकी इच्छा जड़ेश्वर के मन्दिर को देखने की थी । परिचित व्यक्ति के रूप में मैं उनके साथ गया । जब हम वहाँ के महन्त को मिलने उनके कमरे में गए तो वहाँ दीवार पर लटकती हुई बन्दूकें देखीं । इस पर प्रभु आश्रित जी ने पूछा कि आप साधु होकर ये शस्त्र क्यों रखते हैं ? उत्तर में महन्त ने कहा कि कुछ वर्ष पूर्व तक यहाँ घना जंगल था और इसमें हिंसक पशु भी रहते थे। इसलिए स्वरक्षार्थ इन शस्त्रों का संग्रह किया गया है। उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि मूलशंकर के व्रत के समय तो यहाँ घना जंगल रहा होगा जो हिंसक पशुओं से परिपूर्ण था । जब देवेन्द्र बाबू जड़ेश्वर गए होंगे तब भी मार्ग में उन्होंने यही अनुभव किया होगा, तथापि उन्होंने मूलशंकर के इसी मन्दिर में शिवोपासना करने की घारणा बना ली ओर इसके प्रतिपादन में यह भी लिख दिया कि टंकारा का कुबेरनाथ का मन्दिर नगर के भीतर है, जबकि वह प्रत्यक्षतया नगर के बाहर है । ऐसा ही मन्तव्य उन्होंने जंगल के बारे में भी प्रकट किया है ।

इस विषय को समाप्त करने से पूर्व मैं यह लिखना उचित समझता हूँ कि देवेन्द्र बाबू के वर्षों के परिश्रम और शोध के कारण ही ऋषि की वर्तमान में

उपलब्ध जीवनी प्राप्त हो सकी है। उनके प्रति मेरे हृदय में परम आदर है। फिर भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि सत्य के इस अन्वेषक ने जड़ेश्वर की सिद्धि के लिए प्रत्यक्ष के विरुद्ध ऐसा क्यों लिखा ? हमारा तो यह अनुमान है कि पूना-व्याख्यान में प्रयुक्त 'बड़ा' शब्द को पकड़ कर वे आगे बढ़े और ऋषि की आत्मकथा के अन्य वाक्यों पर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया। बहुत सावधानी रखने पर भी अल्पज्ञ मनुष्य से भूल हो जाना स्वाभाविक ही है। देवेन्द्र बाबू की चर्चा के प्रसंग में पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक की एक भूल की ओर भी ध्यान जाता है। पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक आर्यजगत् के मूर्धन्य विद्वान् और ऋषि भक्त थे।[1] कुछ काल तक मैंने उनसे टंकारा में संस्कृत भी पढ़ी थी। जब लाभशंकर ने उन्हें यह बताया कि करसनजी की दो पत्नियाँ थीं, तो उसी जानकारी के आधार पर उन्होंने 'ऋषि दयानन्द का भ्रातृ-वंश और स्वसृ-वंश' नामक पुस्तिका लिख डाली। इस विषय में अधिक जानकारी के लिए जब वे हड़मतिया गए थे तब मैं भी उनके साथ था और मैंने उनसे निवेदन भी किया था कि पुस्तक लिखने में वे जल्दी न करें। लेकिन वहाँ करसनजी के विषय में उन्हें जो कुछ जानकारी मिली उसी के आधार पर उन्होंने उक्त पुस्तिका लिख डाली और ऋषि दयानन्द की जीवनी को लेकर एक नया विवाद खड़ा हो गया।

• • •

1. दयाल मुनि की यह लेखमाला 'वेदवाणी' के दयानन्द-विशेषांक (3) में 1986 ई० प्रकाशित हुई थी। तब पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जीवित थे। - (सं०)

: 6 :

ऋषि के स्वसृ-वंश सम्बन्धी तथ्य तथा एतद्-विषयक भ्रम का निवारण

करसनजी का दौहित्र वंश

यह हम जानते हैं कि मूलशंकर के गृहत्याग और अपने छोटे पुत्रों के देहान्त के कारण करसनजी की सम्पत्ति का स्वामित्व उनकी पुत्री प्रेमबाई को ही प्राप्त हुआ था । प्रेमबाई का विवाह राजकोट जिले के गोंडल के समीपवर्ती गुन्दाला (गुजराती में गुन्दाळा)[1] गाँव के निवासी मंगलजी लीलाधर रावल के साथ हुआ था ।[2] मंगलजी के पुत्र का नाम बोघा था । बोघा का पुत्र कल्याणजी, और कल्याणजी का बड़ा पुत्र पोपटलाल (कि जिसका अपर नाम प्रभाशंकर था) और छोटा पुत्र प्राणशंकर हुआ । इस प्रकार पोपटलाल करसनजी के दौहित्र के वंश में तथा ऋषि दयानन्द की बहिन के वंश में आते हैं ।

वर्तमान लेखकों में एक व्यर्थ का विवाद चल पड़ा है कि पोपटलाल और प्रभाशंकर एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं या ये दोनों पृथक् नामों वाले दो भाई थे । हमारी दृष्टि में यह विवाद निर्रथक ही है, क्योंकि स्वामीजी की जीवनी से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं है । तथापि भ्रम-निवारणार्थ इस सम्बन्ध में

---

1. ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्रों में इस गाँव का नाम प्रायः अशुद्ध - 'गुंदिमाडू', 'गुंडीमांडू', 'Gundimandu' इत्यादि लिखा गया है । - (सं०)
2. डॉ० भवानीलाल भारतीय ने 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' के प्रथम भाग में पृष्ठ 90 पर प्रेमबाई का विवाह 1905 वि० में हुआ था ऐसा लिखा है । - (सं०)

विचार करना आवश्यक है । वर्तमान लेखकों को पोपटलाल और प्रभाशंकर को लेकर जो भ्रम हुआ है उसका कारण उपलब्ध साहित्य में एतद्-विषयक उल्लेख हैं, जिनकी जानकारी आवश्यक है –

प्रथम : देवेन्द्रनाथ द्वारा संगृहीत तथा पण्डित घासीराम द्वारा सम्पादित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' एवं उसका परिशिष्ट 1, जिसमें ऋषि के जन्मस्थान, वंश और प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का प्रामाणिक वर्णन है । परिशिष्ट भाग में दिए गए व्यक्तियों एवं गाँव के नाम प्रायः अशुद्ध छपे हैं ।

द्वितीय : देवेन्द्रनाथ लिखित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' ग्रन्थ जो बँगला से गुजराती में अनूदित होकर प्रकाशित हुआ है, वह प्रायः मुद्रण दोष रहित, शुद्ध और प्रामाणिक है ।

तृतीय : विजयशंकर द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' हिन्दी ग्रन्थ है । मुद्रण दोषों के अतिरिक्त इसमें परस्पर विरुद्ध कथन भी हैं । पोपटलाल विषयक भ्रान्ति का कारण भी यही पुस्तक है ।

चतुर्थ : श्रीकृष्ण शर्मा ने 'महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश-परिचय' नामक पुस्तक हिन्दी में लिखी है । इसकी अधिकांश सामग्री उपर्युक्त पुस्तकों में से ही ली गई है । तथापि अनेक अनुमानों और परिकल्पनाओं से परिपूर्ण एवं मुद्रण दोषों से युक्त यह पुस्तक भी पाठकों में भ्रम पैदा करती है । पोपटलाल विषयक भ्रम इस पुस्तक के कारण भी उत्पन्न हुआ है । वर्तमान चर्चा में इन्हीं पुस्तकों के आधार पर हम विवेचना करेंगे, इसीलिए इन ग्रन्थों का परिचय दिया गया है ।

'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ के लेखक डॉ० भवानीलाल भारतीय ने लिखा है – "बोघा के पुत्र कल्याणजी हुए, जिनके दो पुत्र पोपटलाल तथा प्रभाशंकर रावल थे ।" (प्रथम भाग, पृष्ठ 90) आगे इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग के परिशिष्ट 1 में डॉ० भारतीय

लिखते हैं — "दयानन्द जन्मस्थान निर्णय (विजयशंकर मूलशंकर) तथा श्रीकृष्ण शर्मा के अनुसार पोपटलाल बड़े तथा प्रभाशंकर छोटे थे। किन्तु देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने प्रेमबाई का एक ही प्रपौत्र माना है — प्रभाशंकर कल्याणजी रावल। वे 'पोपटलाल' को उन्हीं 'प्रभाशंकर' का पुकारने का नाम मानते हैं। हमारे विचार से पोपटलाल तथा प्रभाशंकर पृथक् पृथक् हैं।" (पृष्ठ 912)

डॉ० भारतीय के देवेन्द्रनाथ से सहमत न होने का तथा इस विषय में उन्हें भ्रम होने का कारण 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' के दो स्थलों के मुद्रण दोष तथा श्रीकृष्ण शर्मा की उपर्युक्त पुस्तिका है। इसलिए हम पूर्वोक्त सभी पुस्तकों से प्रासंगिक उद्धरण यहाँ दे रहे हैं –

1. देवेन्द्रनाथ लिखते हैं – "इस प्रपौत्र का नाम प्रभाशंकर कल्याणजी रावल है। परन्तु वह साधारणतः पोपट रावल के नाम से जाना जाता है।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 44)
2. "कल्याणजी का पुत्र उपर्युक्त प्रभाशंकर वा पोपटलाल रावल हुआ।"(वही)

'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' में निम्नलिखित उद्धरण मिलते हैं –

1. इस पुस्तक के पृष्ठ 22 और 23 के बीच में पोपटलाल के वक्तव्य की एक फोटो प्रति है जिसमें लिखा है – "तेना दीकरा कल्याणजी तेना दीकरा पोपटलाल त्था (तथा) प्राणशंकर ... (छे)।"
2. स्वामीजी के बाल सखा इब्राहीम (टंकारा में गुजराती उच्चारण के अनुसार 'अभराम बापा' नाम से प्रख्यात थे) ने अपने वक्तव्य में कहा था कि – "जिस मकान में इस समय महाशय पोपटलालजी के भाई प्राणशंकर रहते हैं, वही स्वामी दयानन्द का जन्म गृह है।" (पृष्ठ 24)

3. "आज उनकी सन्तान के ही हाथ में करसनजी की सम्पत्ति विद्यमान है । वर्तमान में म० (महाशय) पोपटलाल तथा म० (महाशय) प्राणशंकर उसका उपयोग कर रहे हैं ।" (पृष्ठ 100)

4. 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' गुजराती पुस्तक में पोपटलाल का एक आवेदन पत्र उद्धृत किया गया है – "तेनो दीकरो हुं अरजदार (अर्जदार) प्रभाशंकर उर्फे (यह अरबी शब्द 'उर्फ' संस्कृत के 'वा' का पर्याय है) पोपट नामे छुं" (पृष्ठ 36)

उपर्युक्त एकाधिक स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी भ्रम का कारण उपर्युक्त पुस्तकों में ही है । यथा – 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' में निम्नलिखित पाठ अशुद्ध है –

"कल्याणजी का पुत्र मैं पोपटलाल रावल **तथा** प्रभाशंकर रावल हैं ।" (पृष्ठ 87)

यहाँ उर्दू के 'उर्फे' शब्द का हिन्दी अनुवाद अशुद्ध हो गया तथा 'उर्फे' को 'वा' के स्थान पर 'और' ('तथा') का पर्याय मान लिया ।

इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखा है – "कल्याणजी के दो पुत्र हुए – पोपटलालजी **तथा** प्रभाशंकर । वर्तमान समय में इन्हीं प्रभाशंकर **व** पोपटलाल के हाथ में करसनजी की सब मलकियत (मिल्कियत) है ।" (पृष्ठ 84)

यहाँ भी 'तथा' के स्थान में 'अथवा' चाहिए और 'व' के स्थान में 'वा' या 'अथवा' चाहिए । यह मुद्रण दोष या अनुवाद दोष का कारण है । आश्चर्य की बात है कि एक ही पुस्तक में तीन स्थानों पर पोपटलाल का अपर नाम प्रभाशंकर बताया गया है और दो स्थलों पर मुद्रण या अनुवाद दोष से इसके विपरीत बताया गया है, तथापि सम्पादक ने इस पर कोई टिप्पणी नहीं लिखी । इसी का यह परिणाम निकला कि वर्षों पश्चात् स्वामीजी की जीवनी लेखकों को भ्रम हुआ तथा इन सब की आलोचना

करने का प्रसंग उपस्थित हुआ ।

देवेन्द्रनाथ संगृहीत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' में पृष्ठ 635 पर भी "कल्याणजी का पुत्र पोपट प्रभाशंकर रावल हुआ" - ऐसा छप गया है । दोनों नामों के बीच में मुद्रण दोष के कारण 'वा' छूट गया । इसी कारण यह भ्रम उत्पन्न हो गया ।

गुजरात से दूर के लेखकों की बात तो क्षम्य मानी जा सकती है, किन्तु राजकोट निवासी श्रीकृष्ण शर्मा भी इस भ्रम के शिकार हुए । उन्होंने लिखा है – "मंगलजी के पुत्र बोघा रावल थे, उनके ज्येष्ठ पुत्र कल्याणजी तथा उनके पुत्र पोपटलाल रावल और कनिष्ठ प्रभाशंकर रावल हुए ।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश-परिचय', पृष्ठ 20)

उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि पोपटलाल का ही अपर नाम प्रभाशंकर था । अर्थात् उनका मूल नाम प्रभाशंकर था, किन्तु वे पोपटलाल के नाम से जाने जाते थे । देवेन्द्रनाथ का यह कथन सत्य है ।

प्रत्यक्ष प्रमाण : मैं स्वयं अपनी साक्षी से कहता हूँ कि पोपटलाल का अपर नाम प्रभाशंकर था और प्राणशंकर उनके छोटे भाई थे । इन दोनों के साथ मेरा निजी परिचय था । पोपटलाल के तृतीय पुत्र जयन्तीलाल तथा प्राणशंकर के तृतीय पुत्र प्रभुलाल मेरे सहपाठी थे ।[1] पारस्परिक मित्रता के कारण हम एक दूसरे के घर जाया करते थे । टंकारा आर्यसमाज के तत्त्वावधान में चलने वाले पारिवारिक सत्संगों के प्रसंग में हम इन दोनों भाईयों के घर कई बार गए हैं । पोपटलाल का निधन 2 जनवरी, 1950 को हुआ था । तब तक वे प्रतिदिन बाजार से निकलते समय हमारी दर्जी की दुकान पर कुछ समय बैठा करते थे । जब दोनों भाई की सम्पत्ति का बंटवारा हुआ तो ऋषि का

---

1. सहपाठी की बात जब याद करता हूँ तब देवेन्द्रनाथ ने ऋषि-जीवनी में टंकारा के वृद्ध पुरुषों के जो नाम लिखे हैं उनमें देवचन्द पानाचन्द और प्रभुराम आचार्य के पौत्र भी मेरे सहपाठी थे । - (ले०)

जन्मस्थान छोटे भाई प्राणशंकर के हिस्से में गया ।[1] उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि प्रभाशंकर का नाम ही पोपटलाल था और प्राणशंकर उनसे छोटे थे । इन दोनों के वंशज आज भी विद्यमान हैं ।

वंशवृक्ष :
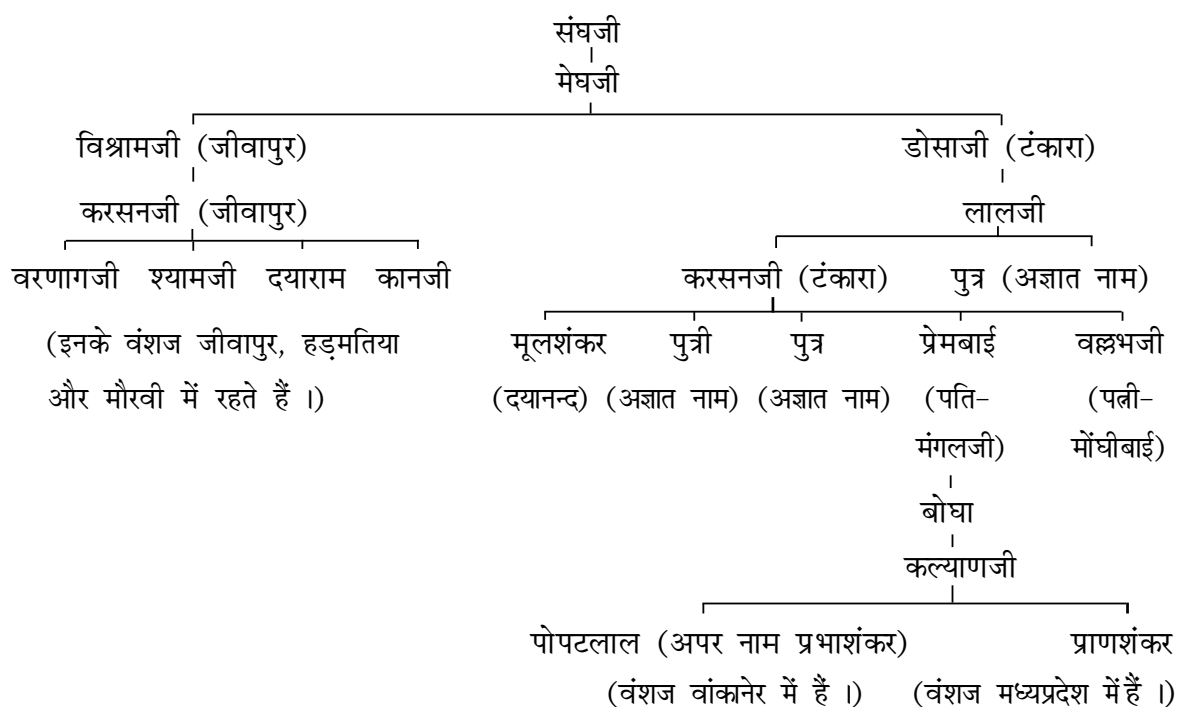
लेखकों से निवेदन

इस विषय का समापन करने से पूर्व एक बात लिखना आवश्यक है कि लेखक या अन्वेषक को अपने निष्कर्ष को प्रकट करने से पूर्व अपने विषय को पूर्णतया आत्मसात् कर लेना चाहिए, अन्यथा वे स्वयं भ्रमित होते हैं और पाठकों को भी भ्रमित करते हैं । स्वामी दयानन्द के जीवन में पहले से ही अनेक विवादास्पद मुद्दे हैं, उनमें अपने अज्ञानवश नए मुद्दों का प्रवेश नहीं कराना चाहिए ।

---

1. प्राणशंकर के लोभ, स्थानिक आर्यसमाज के धनाभाव एवं आर्यजगत् की उपेक्षा के कारण ऋषि का जन्मस्थान एक गृहस्थ के पास चला गया । विडंबना है कि आर्यसमाज उसे आज पर्यन्त पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं कर पाया है । सुना था कि मोगा (पञ्जाब) के ऋषि-भक्त डॉ० मथुरादास (प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक) वहाँ स्मारक रूप में एक टावर बनाना चाहते थे । स्मारक का भी एक लम्बा-चौड़ा इतिहास है, परन्तु यहाँ उसका वर्णन करना अप्रासंगिक व कष्टदायक सिद्ध होगा । - (ले०)

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने 'दयानन्द सन्देश' दिल्ली के आश्विन 1985 ई० के अंक में पृष्ठ 16 पर 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' (प्रथम संस्करण) की समीक्षा करते हुए लिखा है – ''पृष्ठ 4 पर शैशव और अध्ययन के अध्याय में ऋषि की बहिन के वंशजों में पोपटलाल तथा प्रभाशंकर की चर्चा की गई है। पुनः पृष्ठ 547 पर देवेन्द्र बाबू के अनुसार दोनों को एक ही व्यक्ति बताया गया है। इससे भ्रम उत्पन्न होता है। टंकारा में अब भी ऐसे व्यक्ति जीवित हैं जिन्होंने इन दोनों को देखा था तथा दोनों के वंशज आज जीवित हैं।''

प्रा० 'जिज्ञासु' दो वर्ष पूर्व शिवरात्रि (1982 ई०) पर टंकारा में मुझ से मिले थे। उस समय इस विषय के साथ-साथ लाला भक्त (भगत), जामनगर-द्वार से ऋषि का टंकारा-त्याग आदि विषयों पर मैंने उन्हें अपने विचारों से अवगत कराया था। उस समय उन्होंने ये बातें अपनी डायरी में नोट भी कर ली थीं। सम्भवतः 'दयानन्द सन्देश' की उपर्युक्त पंक्ति में उन्होंने मेरी ओर ही संकेत किया है।

प्रा० 'जिज्ञासु' जब डॉ० भारतीय के ग्रन्थ की गहराई में जाकर समीक्षा कर रहे थे, तब उनके जैसे प्रबुद्ध लेखक का यह लिखना ठीक नहीं है कि ''देवेन्द्रनाथ का विचार ठीक नहीं।'' स्वकथन की पुष्टि में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। पुनः स्पष्ट कर दूँ कि देवेन्द्रनाथ का कथन ठीक है कि पोपटलाल और प्रभाशंकर एक ही व्यक्ति थे। उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा है कि पोपटलाल का दूसरा भाई नहीं था।

गणपति केशवराम शर्मा के पत्र से उत्पन्न भ्रम का निवारण

गणपति केशवराम शर्मा ने 22 सितम्बर, 1911[1] को आर्य प्रतिनिधि सभा

---

1. विजयशंकर सम्पादित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' के पृष्ठ 74 पर इस पत्र का दिनांक मुद्रण त्रुटि से 22.9.1922 छपा है, जो कि स्पष्टतः गलत है; क्योंकि 1920 ई० में प्रकाशित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' (मूल बँगला लेखक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय और गुजराती अनुवादक त्रिभोवनदास दामोदरदास गढ़िया) गुजराती पुस्तक के पृष्ठ 95-98 पर यह पत्र उद्धृत किया गया है और वहाँ उसका सही दिनांक 22.9.1911 दिया गया है। – (सं०)

मुम्बई के मन्त्री को गुजराती भाषा में एक पत्र लिखा। इस पत्र के कुछ वाक्यों का अभिप्राय था - "मैंने सुना है कि कल्याणजी के पिता बोघा रावल स्वामी दयानन्द की बहिन की पुत्री के पुत्र थे। जब स्वामीजी के गृह-त्याग पर उनके पिता का कोई उत्तराधिकारी नहीं रहा तो उन्होंने अपनी सम्पत्ति का अधिकार अपनी पुत्री को दिया। जब वह पुत्री भी बिना पुत्र के मर गई तो उसकी सम्पत्ति का स्वामित्व उसकी पुत्री के पुत्र बोघा रावल को प्राप्त हुआ। इन्हीं बोघा के पुत्र कल्याणजी और कल्याणजी के पुत्र पोपटलाल वर्तमान में टंकारा में हैं।" ('स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय', पृष्ठ 97)

उक्त पत्र से यह निष्कर्ष निकलता है कि कल्याणजी के पिता बोघा रावल स्वामीजी की बहिन प्रेमबाई के दौहित्र (पुत्री के पुत्र) थे।

यहाँ हमने पत्र का कुछ ही अंश उद्धृत किया है। पत्र लम्बा है और उसमें लेखक ने अपने शोधकार्य की कठिनाइयों तथा इस कार्य में लोगों के सहयोग न मिलने का भी उल्लेख किया है।

वस्तुतः यह पत्र लेखक का प्रारम्भिक शोध था और उन्होंने इस सम्बन्ध में जो कुछ सुना उसी के आधार पर लिख दिया। इसलिए बोघा रावल को प्रेमबाई का दौहित्र बताना मात्र किंवदन्ती पर ही आधारित है।

यदि बोघा रावल प्रेमबाई की पुत्री का पुत्र होता तो उसका 'रावल' उपगोत्र नहीं हो सकता, क्योंकि मंगलजी का गौत्र रावल था और वे अपनी पुत्री का इसी गोत्र में विवाह कैसे कर सकते थे ? इसलिए यही मानना चाहिए कि बोघा रावल मंगलजी के ही पुत्र थे।

उपर्युक्त ग्रन्थों में भी सर्वत्र बोघा रावल को ऋषि की बहिन का पुत्र तथा उनका वंशज पोपटलाल बताया गया है तथा इसकी सिद्धि में अनेकविध प्रमाण भी दिए गए हैं। इसलिए अधिक विस्तार करना अनावश्यक है।

अन्त में एक बात और ध्यातव्य है : जिस अन्य पुस्तक (अर्थात् विजयशंकर

मूलशंकर सम्पादित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव') में गणपति केशवराम शर्मा का पत्र छपा है, उसी के पूर्व पृष्ठों में (पोपटलाल के लिखित वक्तव्य में) यह छप चुका है कि बोघा प्रेमबाई का पुत्र था। इस प्रकार यदि सम्पादक एक ही पुस्तक में प्रकाशित होने वाले इन परस्पर विरोधी वाक्यों पर कोई टिप्पणी दे देता तो भावी लेखकों को इससे भ्रमित होने की शंका नहीं रहती।

• • •

: 7 :

ऋषि की माता का नाम क्या था ?

रुक्मिणी बाई ?

यशोदा बाई ?

अमृता बाई ?

ऋषि दयानन्द के जीवन–चरित्र में उनकी माता के नाम को लेकर अनेक विवाद हैं। स्वामी स्वतन्त्रानन्द ने ऋषि की माता का नाम यशोदा बताया। कविरत्न आचार्य मेधाव्रत ने 'दयानन्द दिग्विजय' में ऋषि की माता का नाम रुक्मिणी लिखा है। यो दोनों ही नाम – यशोदा एवं रुक्मिणी कल्पित हैं, क्योंकि इन नामों की पुष्टि में ये दोनों ही लेखक न तो कोई प्रमाण प्रस्तुत कर सके हैं और न ही किसी विश्वसनीय व्यक्ति की कोई साक्षी ही दे सके हैं।

श्रीकृष्ण शर्मा ने अपनी पुस्तक में ऋषि की माता का नाम अमृता बाई होने के सम्बन्ध में निम्न विवरण दिया है –

"करसनजी की पत्नी कच्छ–भूज के एक पुजारी की कन्या थीं, जिसके पिता का नाम सम्भवतः भीमजी था। ... भीमजी की पुत्री का नाम सुश्री अमृता बाई था। यही महर्षि दयानन्द की पूजनीय माता थी।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय', पृष्ठ 18)

वे आगे लिखते हैं – "मोंघी बाई के रिश्तेदार बालाशंकर भीमजीभाई दवे देवेन्द्र बाबू से भी मिले थे। उन्होंने विजयशंकर को बताया था कि मोंघीबाई के श्वशुर धनाढ्य थे और उनकी सास का नाम अमृता बाई था। किन्तु उन्होंने स्वयं इसका उल्लेख नहीं किया।" (वही, पृष्ठ 18)

समीक्षा : श्रीकृष्ण शर्मा के उपर्युक्त कथन की समालोचना यदि हम करें तो प्रथम बात तो यह निकलती है कि देवेन्द्र बाबू को बालाशंकर ने कहा था – "हमने मोंघी बाई को अनेक बार कहते सुना था कि उसके श्वशुर धनाढ्य थे ।"[1], परन्तु बालाशंकर के इस कथन से स्वामीजी की माता के सम्बन्ध में स्वयं कुछ जानकारी नहीं मिलती ।

देवेन्द्र बाबू ने तो स्वयं लिखा है कि – "मूलजी की जननी के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते ।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 47) देवेन्द्र बाबू स्वयं ऋषि-जीवनी के शोध के लिए पन्द्रह वर्ष निरन्तर घूमे, चार बार सौराष्ट्र आए तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों की जानकारी प्राप्त की; फिर भी ऋषि की माता के सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं मिली । इसलिए उन्होंने अपने अभिप्राय को उपर्युक्त शब्दों में व्यक्त किया ।

दूसरी बात है कि बालाशंकर ने विजयशंकर को ऋषि की माता का नाम बताया । परन्तु इस सम्बन्ध में स्वयं श्रीकृष्ण शर्मा ही लिख-चुके हैं कि – "उन्होंने (अर्थात् विजयशंकर ने) स्वयं इसका उल्लेख नहीं किया ।" विजयशंकर ने 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' ग्रन्थ का सम्पादन किया है । इसमें उन्होंने मोंघीबाई के श्वशुर के धनाढ्य होने का उल्लेख तो किया है, परन्तु इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा । उन्होंने अन्यत्र भी कहीं इस नाम का संकेत नहीं दिया और न किसी को बताया । तब यह कैसे माना जाए कि उन्होंने केवल श्रीकृष्ण शर्मा को ही बताया और श्रीकृष्ण शर्मा ने भी पण्डित विजयशंकर के देहान्त के बाद 1964 ई० में प्रकाशित अपनी उपर्युक्त पुस्तक में स्वामीजी की माता का यह नाम लिखा ।

इन पंक्तियों का लेखक स्वयं 1952 ई० में मुम्बई में रहता था और प्रत्येक रविवार के सत्संग में जाता था । उस समय अनेक बार उसकी विजयशंकर

---

1. 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 45 तथा 336 एवं 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय', पृष्ठ 35 – (ले०)

से मुलाकात हुई, परन्तु उन्होंने यह बात कभी नहीं बताई । विजयशंकर जैसे ऋषि-जीवनी के अन्वेषक तथा प्रबुद्ध लेखक को यदि ऋषि की माता का वास्तविक नाम ज्ञात होता तो वे उसे प्रकट किए बिना नहीं रहते और ऐसा करने से यशोदा, रुक्मिणी आदि नामों का पूर्ण प्रतिवाद भी हो जाता । इससे यह सिद्ध होता है कि विजयशंकर की जानकारी में स्वामीजी की माता का यह नाम नहीं था ।

श्रीकृष्ण शर्मा ने इस विषय में दूसरा विवरण प्रस्तुत किया है — "मैंने स्वयं महर्षि के 102 वर्षीय बालसखा श्री इब्राहीम से टंकारा शताब्दी के अवसर पर पूछा था । तब उन्होंने कहा था कि वे स्वयं स्वामीजी की माता को अमूबा (अमृत बाई) कह कर बुलाते थे । इनकी पुष्टि में मैंने पोपटलाल रावल द्वारा करवा कर मैंने सर्व प्रथम एक लेख सन् 1936 के आस-पास 'आर्यमित्र' में भी लिखा था, जिसमें स्वामीजी की माता का नाम अमृताबाई सिद्ध किया था ।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय', पृष्ठ 19)

इस कथन की समीक्षा करें तो ज्ञात होता है कि टंकारा शताब्दी के अवसर पर दिए गए इब्राहीम के लम्बे वक्तव्य में स्वामीजी के शरीर का वर्णन, उनके पिता का परिचय, शिवालय आदि का प्रसंग तो छपा है, ('दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 22-24) परन्तु उसमें माता आदि का नाम कहीं नहीं है ।

दूसरी बात यह है कि उस अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द भी आए थे जो ऋषि के जीवन की जानकारी के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील थे । इसी प्रसंग में वे जीवापुर भी गए थे । यह हम पहले देख चुके हैं । (द्रष्टव्य : प्रकरण 3) तब यह प्रश्न उठता है कि उन्होंने इब्राहीम से माता का नाम क्यों नहीं पूछा ? स्वामी स्वतन्त्रानन्द भी टंकारा गए थे । उन्होंने भी इस सम्बन्ध में कोई जानकारी क्यों नहीं प्राप्त की ? यदि श्रीकृष्ण शर्मा को स्वामीजी की माता के इस नाम का पता इब्राहीम से चल गया तो उन्होंने यह जानकारी

स्वामी श्रद्धानन्द को क्यों नहीं दी ? यदि उसी समय यह स्पष्टीकरण हो जाता तो स्वामी स्वतन्त्रानन्द और आचार्य मेधाव्रत को नए नाम कल्पित नहीं करने पड़ते ।

तीसरा – इस शताब्दी महोत्सव का एक उद्देश्य यह भी था कि ऋषि-जीवनी की सन्देहास्पद बातों का निवारण किया जाए और वस्तुस्थिति को सामने रखा जाए । जिस नाम की जानकारी देवेन्द्र बाबू को वर्षों की खोज के पश्चात् भी नहीं हो सकी, यदि उस नाम का पता ऐसे अवसर पर लग गया होता तो भला शताब्दी सभा के मन्त्री पण्डित विजयशंकर उसे प्रकट किए बिना कैसे रह सकते थे ?

एक और आश्चर्य की बात है कि जब श्रीकृष्ण शर्मा को इस नाम की जानकारी 1926 ई० में हो गई तो उन्होंने उसे प्रकट करने में पूरे दस वर्ष क्यों लगा दिए ? जैसा कि उन्हीं के कथन से ज्ञात होता है कि 1936 ई० के आस-पास 'आर्यमित्र' में उन्होंने इसे प्रकट किया । इतने लम्बे समय तक उन्होंने इस मूल्यवान् रहस्य को क्यों छिपाए रखा ?

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि श्रीकृष्ण शर्मा ने इब्राहीम और पण्डित विजयशंकर के देहान्त के बाद ही इस तथ्य का उद्घाटन किया । इब्राहीम के देहान्त के बाद तो उन्होंने 1936 ई० में इसे 'आर्यमित्र' में प्रकट किया और विजयशंकर के देहान्त के बाद उन्होंने उपर्युक्त पुस्तिका 1963 ई० में प्रकाशित की । अतः उनका कथन अप्रामाणिक और अविश्वसनीय है । स्वयं इस नाम का कैसे ज्ञान हुआ ?

इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं — "महर्षि के कुटुम्ब से सम्बन्धित अभी भी अनेक वृद्ध और वृद्धाएँ जीवित हैं । वे सुनी-सुनाई बातों के आधार पर महर्षि के जीवन सम्बन्धी अनेक प्रसंगों की चर्चा करते हैं ।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय', पृष्ठ 20-21)

इस कथन का अभिप्राय भी यही है कि अमृता बाई का नाम भी किंवदन्ती

रूप में ही आया होगा और उसे ही एक मान्यता के रूप में श्रीकृष्ण शर्मा ने स्वीकार कर लिया ।

कर्मवीर का कथन

'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' के लेखक डॉ० भवानीलाल भारतीय ने श्रीकृष्ण शर्मा की 'महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश परिचय' पुस्तक तथा कर्मवीर के द्वारा बताई गई बातों के आधार पर स्वामीजी की माता का यही नाम (अर्थात् अमृत बेन - अमू-बा) लिखा है। (प्रथम भाग, पृष्ठ 103) अतः कर्मवीर[1] के कथन की विवेचना करना भी आवश्यक हो गया है ।

मुझे कर्मवीर के इन लेखों को देखने का अवसर नहीं मिला, अतः उन पर मेरे द्वारा कुछ समालोचना करना सम्भव नहीं है। किन्तु जब जामनगर में 22 दिसम्बर, 1983 को दयानन्द निर्वाण शताब्दी मनाई गई उस समय कर्मवीर (स्वामी शिवानन्द) भी वहाँ आए थे। तब मैंने उनसे यही बात पूछी कि उन्होंने किस आधार पर ऋषि की माता का यह नाम निर्धारित किया है ? इसके उत्तर में जो उन्होंने कहा उसका अभिप्राय यह है कि उनके पूर्वज करसनजी के यजमान थे और वे स्वयं भी पोपटलाल के यजमान रहे हैं। उन्होंने पोपटलाल तथा उसकी बुआ वेणी बाई तथा अन्यों से भी ऋषि की माता का नाम यही सुना है। इसके अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य प्रमाण नहीं है ।

---

1. कर्मवीर का पूर्वाश्रम का नाम श्यामजी भाई कल्याणजी राठोड़ था । वे टंकारा के निकटवर्ती फाटसर नामक गाँव के निवासी थे । वे कृषि कार्य करते थे। कुछ कारण से वे चित्तौड़ गुरुकुल चले गए थे। वहाँ भी कृषि कार्य करते थे। वे प्रायः टंकारा आते थे और मेरा उनसे निकट का परिचय भी था । वानप्रस्थ के बाद संन्यास ग्रहण कर उन्होंने शिवानन्द नाम ग्रहण किया था । कर्मवीर ने 'आर्य-मर्यादा' और 'सुधाकर' पत्रों में स्वामीजी की माता के नाम का निर्देश किया है। उक्त पत्रिकाओं में उनका यह लेख स्वामी वेदानन्द वेदवागीश द्वारा लिखवाया गया था । - (ले०)

यदि कर्मवीर की बात को तथ्यपूर्ण माना जाए तो प्रश्न होता है कि पोपटलाल और उनकी बुआ ने यह बात देवेन्द्र बाबू को क्यों नहीं बताई तथा 1926 ई० में टंकारा में आयोजित शताब्दी महोत्सव तक स्वामी श्रद्धानन्द और अन्य व्यक्तियों को क्यों नहीं बताई गई ?

मेरे पिता और पोपटलाल प्रायः समवयस्क थे । हमारा उनसे पारिवारिक परिचय भी था। वे प्रायः प्रतिदिन हमारी दुकान पर आया करते थे, तब उन्होंने यह बात अन्यों को न बताकर कर्मवीर ही को क्यों बताई ? फिर कर्मवीर ने ही वर्षों तक इसे प्रकट क्यों नहीं किया ? पोपटलाल के देहान्त के वर्षों पश्चात् वे यह बात कह रहे हैं ।

तथ्य तो यह है कि यह एक किंवदन्ती मात्र है, जिसे श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा प्रचारित किया गया था। यह तो सम्भव है कि कर्मवीर के पूछने पर पोपटलाल ने स्वामीजी की माता के इस नाम का केवल किंवदन्ती मात्र कहकर उल्लेख किया हो । अन्यथा उन्होंने अपने किसी वक्तव्य में अथवा कथन में कभी इस बात का कोई संकेत नहीं दिया । यद्यपि वे (पोपटलाल) स्वयं टंकारा में आयोजित दयानन्द जन्म शताब्दी समारोह में भी उपस्थित थे तथा उसके पश्चात् भी वे उत्तर में लाहौर तक के आर्यसमाजों में घूमते हुए गए थे। उनके इन प्रवासों तथा आर्य नेताओं से हुई उनकी भेंटों का वर्णन मैंने स्वयं उन्हीं के मुँह सुना है ।[1] इससे सिद्ध होता है कि स्वामीजी की माता के नाम की यह किंवदन्ती सम्भवतः उन्होंने दूसरों से सुनी होगी किन्तु वे इसे प्रामाणिक या विश्वसनीय मानते हों, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता । अतः जिस प्रकार स्वामीजी की माता का नाम यशोदा और रुक्मिणी कल्पित किया गया है, उसी प्रकार यह अमृता बाई नाम भी काल्पनिक है ।

---

1. पोपटलाल पण्डित भगवद्दत्त आदि आर्य विद्वानों से भेंट करते थे । उन विद्वानों से उन्होंने कभी ऋषि की माता का नाम नहीं बताया ! और पण्डित भगवद्दत्त का तो जीवन ही शोध-कार्य को समर्पित रहा है । तब क्या उन्होंने भी पोपटलाल से ऋषि की माता के नाम के बारे में नहीं पूछा होगा ? - (ले०)

अतः हमें देवेन्द्र बाबू के इस कथन तक ही सीमित रहना चाहिए कि — ''मूलजी (ऋषि दयानन्द) की जननी के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते'' ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 47), और आगे भी कुछ जान सकेंगे इसकी सम्भावना कम है; क्योंकि इस सम्बन्ध की प्रामाणिक जानकारी यदि वर्षों पूर्व देवेन्द्र बाबू को भी प्राप्त नहीं हो सकी तो अब इसके जानने वाले या बताने वाले शायद ही इस धराधाम पर अवशिष्ट रहे हो। जगत् को सत्यार्थ से आलोकित करने वाले ऋषि दयानन्द जिस की कोख से पैदा हुए उस जननी का नाम अज्ञात है !

• • •

: 8 :

ऋषि के भाई-बहिन व चाचा के नामों के विषय में भ्रम-निवारण

भाई-बहिन के नाम

श्रीकृष्ण शर्मा ने जिस प्रकार ऋषि की माता के नाम की कल्पना की उसी प्रकार उन्होंने ऋषि के भाई-बहिन व चाचा के नाम की भी कल्पना की है । इस सम्बन्ध में वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं - ''महर्षि के आत्म-चरित में लिखा है कि मुझसे छोटी एक बहिन (रत्नबा), फिर उनसे छोटा एक भाई, फिर एक बहिन (प्रेमबा) और एक भाई (नवलशंकर) हुए थे । अर्थात् दो भाई, दो बहिन थे । कोष्ठक के अन्दर जो नाम लिखे हैं वे मैंने पता लगाकर लिखे हैं, वे महर्षि द्वारा बतलाए गए नहीं हैं ।'' ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय', पृष्ठ 18)

श्रीकृष्ण शर्मा का यह वाक्य अर्ध-सत्य है, क्योंकि ऋषि के एक भाई का नाम वल्लभजी तथा एक बहिन का नाम प्रेमबाई था इसका पता स्वयं देवेन्द्र बाबू ने लगाया था । किन्तु करसनजी की अन्य दो सन्तानों के बारे में वे पता नहीं लगा पाए थे । प्रत्युत उन्होंने तो लिखा है कि - ''दूसरे (पुत्र) का न तो नाम ही ज्ञात हो सका और न उसके विषय में कोई और बात ही ज्ञात हो सकी ।'' ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 43)

1. यहाँ हम यह भी पूछना चाहते हैं कि रत्नबा तथा नवलशंकर इन नामों का पता श्रीकृष्ण शर्मा को कैसे लगा, कहाँ से लगा ? इसका आधार क्या है ? इस सम्बन्ध में उन्होंने कहीं कुछ विवेचना नहीं की है ।

2. दूसरा यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि रत्नबा तथा प्रेमबा आदि नाम कि जिनके पीछे 'बा' लगा है, वह सौराष्ट्र की परम्परा के अनुसार गलत है। सौराष्ट्र में गरासिया (क्षत्रिय) जाति में पुरुषों के नाम के पीछे 'भा' या 'सिंह' लगाया जाता है और उसी प्रकार उनकी स्त्रियों के नाम के पीछे 'बा' लगाने का प्रचलन है। किन्तु ब्राह्मणों में यह प्रथा नहीं है। वहाँ स्त्रियों के नाम के पीछे 'बाई' लगाया जाता है। बंगाली होते हुए भी देवेन्द्र बाबू को इस बात का ज्ञान था। इसीलिए उन्होंने स्व-ग्रन्थ में प्रेमबाई, मोंघीबाई तथा वेणीबाई आदि नाम सौराष्ट्र की प्रथा के अनुसार ही लिखे हैं।

चाचा का नाम

भाई और बहिन के नामों की ही भाँति श्रीकृष्ण शर्मा ने स्वामीजी के चाचा के नाम की भी कल्पना की है। इस प्रसंग में वे लिखते हैं - "लालजी तिवारी के दो पुत्र थे। बड़े श्री मावजी और छोटे श्री करसन जी तरवाड़ी थे।" ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश-परिचय', पृष्ठ 11-12) यह मावजी नाम उन्होंने किस आधार पर लिखा और ये करसनजी के बड़े भाई थे, यह भी उन्होंने कैसे जाना - इस सब का कोई संकेत श्रीकृष्ण शर्मा ने नहीं दिया और न ही इसका कोई आधार ही प्रकट किया है।[1]

अतः यही कहा जा सकता है कि या तो ये नाम सुनकर लिखे गए हैं अथवा कल्पना के आधार पर लिखे गए हैं। मात्र किंवदन्ती को ऋषि-जीवनी जैसे ऐतिहासिक विषय में स्वेच्छानुसार जोड़ देना उचित नहीं है।

यह संकेत करना इसलिए आवश्यक है कि आर्यजगत् के सभी विद्वानों को इस सम्बन्ध में सावधानी बरतनी चाहिए। मेरे कथन का

1. यद्यपि 'पूना-व्याख्यान' ('उपदेश मञ्जरी') में - आत्मकथा में दादा और चाचा दोनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इससे बड़े भाई की सम्भावना हो सकती है। परन्तु श्रीकृष्ण शर्मा ने कोई निर्देश नहीं किया है। - (ले०)

सार इतना ही है कि श्रीकृष्ण शर्मा ने इन नामों के लिए कोई प्रमाण या आधार नहीं बताया ।

श्रीकृष्ण शर्मा ने अपनी पुस्तक में निम्लिखित कुछ अन्य कल्पनाएँ भी की हैं –

1. जीवा मेहता टंकारा के नगराध्यक्ष थे ।
2. प्रभाशंकर पोपटलाल का भाई था ।

   इन दोनों भ्रमों का निवारण हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं ।
3. श्रीकृष्ण शर्मा ने लालजी तिवारी को डोसाजी का लघु भ्राता बताया है । ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश-परिचय', पृष्ठ 13) वास्तव में लालजी तो डोसाजी के पुत्र थे ।
4. श्रीकृष्ण शर्मा ने यह भी कल्पना की है कि करसनजी के श्वशुर का नाम भीमजी था जो एक पुजारी थे और मौरवी में रहते थे । उनकी यह कल्पना भी मिथ्या है कि सौराष्ट्र में प्रचलित प्रथा के अनुसार प्रथम पुत्र मूलशंकर का जन्म अपने नाना के घर मौरवी में हुआ था । (वही, पृष्ठ 18)[1]

वस्तुतः श्रीकृष्ण शर्मा ने अपनी यह पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय' पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक की पुस्तक 'ऋषि दयानन्द का भ्रातृ-

---

1. यह भी श्रीकृष्ण शर्मा का वदतोव्याघात है । क्योंकि उन्होंने अनेक स्थान पर ऋषि का जन्मस्थान टंकारा लिखा है । शर्मा जी कुछ समय टंकारा में रहकर राजकोट में स्थायी हुए थे । वे मुझे टंकारा कई बार मिलते रहते थे और अपनी शोध के नाम पर अनेक गप्पें लगाते रहते थे । उनमें से एक गप्प में उन्होंने कहा था कि – ऋषि के मौरवी में जन्म के समय वहाँ के नगर-सेठ (गुजरात में 'नगर-सेठ' शब्द का प्रयोग नगर की सब से प्रतिष्ठित या मुख्य व्यक्ति, नगर-श्रेष्ठी, नगरपति, कानून का अमल करानेवाले परगणा के अधिकारी इत्यादि के लिए प्रयुक्त होता है । – सं०) ने जो भेंट प्रदान की थी, उसका उल्लेख सेठ की डायरी (गुजराती में 'चोपडा') में मिलता है । बस, ऐसे ही भ्रम उन्होंने फैलाए हैं । – (ले०)

वंश और स्वसृ–वंश' के खण्डन में लिखी थी। परन्तु वे कर नहीं पाए, क्योंकि बिना शोध किए ही उन्होंने लिख दिया कि विश्रामजी के पौत्र का नाम करसनजी था। ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश–परिचय', पृष्ठ 12) वास्तव में यह विश्राम जी का पुत्र था।

इस प्रकार के और भी कई गलत अनुमान कर श्रीकृष्ण शर्मा ने ऋषि–जीवनी जैसे ऐतिहासिक विषय में नाना प्रकार के भ्रम और विवाद उत्पन्न किए हैं। श्रीकृष्ण शर्मा की भूलों के कुछ और नमूनें हम आगे भी सायला के प्रसंग में देखेंगे। मेरा प्रयोजन उनकी पुस्तक की समालोचना करना नहीं है, बल्कि केवल विषय से सम्बन्धित प्रसंगों के सम्बन्ध में उनके द्वारा उत्पन्न किए गए भ्रमों का निवारण करना ही है।

इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व यह लिख देना आवश्यक है कि श्रीकृष्ण शर्मा तो पोपटलाल के समकालीन थे और उन्हें जानते भी थे। फिर भी यह आश्चर्य होता है कि वे पोपटलाल के दो नाम विषयक तथ्य को नहीं जानते थे। ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश–परिचय', पृष्ठ 20) जब समकालीन व्यक्ति के सम्बन्ध में इतना अज्ञान हो सकता है तो सौ–सवासौ वर्ष पूर्व के ऋषि के नाना, माता, भाई–बहिन और चाचा आदि के नामों के विषय में उनको क्या तथ्यात्मक भ्रम नहीं हो सकता है ?

यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि ऋषि–जीवनी पर जिसने जैसा चाहा उसने वैसा लिख दिया। इसीलिए किसी ने संशोधन के नाम पर, तो किसी ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए, तो किसी ने अपने अज्ञानवश तथा किसी अन्य ने अपनी धारणा अथवा कल्पना के बल पर अप्रामाणिक, असत्य और अविश्वसनीय बातों को ऋषि–जीवनी में मिला दिया है। इस पर किसी का नियन्त्रण भी नहीं है।

• • •

: 9 :

ऋषि के महाभिनिष्क्रमण के सम्बन्ध में भ्रम-निवारण

ऋषि दयानन्द की आत्मकथा में आता है कि बहिन और चाचा की मृत्यु से उनमें वैराग्य की भावना जागरित हो उठी और सायला जाने का निश्चय कर उन्होंने गृहत्याग किया । लगता है कि सायला ही मूलशंकर का प्रथम गन्तव्य था ।

देवेन्द्रनाथ की कल्पना : इस सम्बन्ध में देवेन्द्रनाथ लिखते हैं - ''अतः सन्ध्या समय टंकारा त्याग करके उन्होंने सायला की ओर प्रस्थान किया । ... टंकारा के वांकानेर-द्वार से जाना हो तो दक्षिण[1] (पश्चिम) की ओर जाना चाहिए, परन्तु मूलजी ने ऐसा नहीं किया । वे जामनगर-द्वार से होकर पश्चिम की ओर गए थे । यदि यह प्रश्न हो कि इस बात का क्या प्रमाण है कि वे पश्चिम की ओर गए थे, तो इसका उत्तर यह है कि टंकारा से चलने के पश्चात् की घटना के सम्बन्ध में दयानन्द ने लिखा है कि - **''चार कोस दूर एक ग्राम में मैंने रात्रि बिताई, अगले दिन बहुत सबेरे उठकर मैं चल दिया । थोड़ी दूर पर एक हनुमान् के मन्दिर में पहुँचा और कुछ देर आराम किया ।''** आत्मकथा का यह उद्धरण देकर देवेन्द्रनाथ आगे लिखते हैं -

''घर से निकलने के दूसरे दिन वे एक हनुमान् के मन्दिर में पहुँचे थे और वहाँ कुछ देर विश्राम किया था । ... यह हनुमान् का मन्दिर ऐसा होना चाहिए

---

1. 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 61 पर छपा यह अशुद्ध है, यहाँ 'पूर्व' पाठ होना चाहिए । - (ले०)

जहाँ पथिकों को आश्रय मिल सके। यह निश्चय है कि जब तक कोई मन्दिर बड़ा न हो और उसमें खान-पान की उपयोगी वस्तु मिलने की सुविधा न हो तो वह किसी प्रकार पथिकों का आश्रय-स्थान और विश्राम-स्थल नहीं हो सकता। ... ऐसा मन्दिर बड़े रामपुर[1] में है। ... इससे यही अनुमान होता है कि टंकारा छोड़ने के दूसरे दिन मूलजी ने रामपुर के हनुमान् के मन्दिर में विश्राम किया था।'' ('महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 61-62)

इसी की पुष्टि करते हुए टंकारा के वृद्ध पुरुष प्रभुराम आचार्य ने देवेन्द्र बाबू को कहा था कि वे रामपुर में ही ठहरे थे। इसमें एक तर्क यह भी दिया गया है कि सिद्धपुर में पिता के द्वारा पकड़े जाने पर मूलशंकर ने उन्हें यह अवश्य बताया होगा कि घर छोड़कर वे कहाँ-कहाँ गए ? सिद्धपुर से लौटकर करसनजी ने यही बातें अपनी पुत्री प्रेमबाई को बताई होगी और प्रेमबाई ने प्रभुराम को।

प्रथम : देवेन्द्रनाथ के वर्णन से ज्ञात होता है कि उन्होंने यह सब विवरण आत्मकथा के आधार पर लिखा है, किन्तु आत्मकथा का लिखित शुद्ध रूप जैसा आज हमें उपलब्ध होता है वैसा प्रयत्न करने पर भी स्वयं देवेन्द्रनाथ को उपलब्ध नहीं हुआ था।[2]

द्वितीय : करसनजी से चली हुई यह अनुश्रुति कर्णानुकर्ण प्रभुराम आचार्य तक आई। अतः इसकी परख आवश्यक है।

---

1. बड़े रामपुर के निकट ही एक छोटा रामपुर गाँव भी हैं। सम्प्रति बड़े रामपुर को 'महेन्द्रपुर' और छोटे रामपुर को 'उमियानगर' भी कहा जाता है। गुजराती में इन गाँवों को 'रामपुर' के स्थान पर 'रामपर' बोला एवं लिखा जाता है। - (सं०)

2. स्वामी दयानन्द की स्व-हस्ताक्षर से लिखित आत्मकथा को देखने के लिए देवेन्द्रनाथ अजमेर स्थित परोपकारिणी सभा में गए थे, परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी वह उन्हें प्राप्त नहीं हुई थी। इस बात का दुःख उन्होंने विस्तार से प्रकट किया था। (द्रष्टव्य : गुजराती पुस्तक 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय', पृष्ठ 15) - (ले०)

तीसरा : कारण यह भी बताया गया है कि किसी परिचित व्यक्ति से भेंट न हो जाए और कोई व्यक्ति ढूँढ़ न सके, इसीलिए वे उल्टे रास्ते चले और नगर के पश्चिम की ओर चले गए ।

ऋषि के शब्दों में निष्क्रमण

यहाँ समीक्षा रूप में हम आत्मकथा के अनुसार टंकारा से स्वामीजी के निष्क्रमण प्रसंग को लिखते हैं –

"फिर गुपचुप संवत् 1903 के वर्ष घर छोड़ के सन्ध्या के समय भाग उठा । चार कोस पर एक ग्राम था वहाँ जाकर रात्रि को ठहर कर दूसरे दिन प्रहर रात्रि से उठ के 15 कोस चला, परन्तु प्रसिद्ध ग्राम, सडक और जानकारी के ग्रामों को छोडकर बीच-बीच में नित्य चलने का प्रारम्भ किया । तीसरे दिन मैंने किसी राजपुरुष से सुना कि फसाने का लड़का घर छोड़ कर चला गया उसको खोजने के लिए सवार और पैदल आदि भी यहाँ तक आए थे ।" (लिखित 'आत्मकथा', पृष्ठ 9)

पुनः पूना व्याख्यान में निम्न पाठ मिलता है –

"मैं एक दिन सायं काल शौच जाने का निमित्त (बहाना) करके धोती साथ लेकर घर से निकल पड़ा । ... मैं एक समीप के गाँव में चला गया ... उसी रात को तड़के चार घड़ी रात रही तो मैं (गाँव से) निकल पड़ा और अपने गाँव से लगभग 10 कोस के अन्तर के एक गाँव में हनुमान् के मन्दिर में ठहरा । वहाँ से सायला जोगी (योगी) नाम का कोई पुरुष था उसके पास गया ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरणों से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं –

1. सायला जाने का निश्चय था ।

---

1. 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', पृष्ठ 437 - (सं०)

2. प्रथम रात्रि टंकारा से चार कोस दूर के गाँव में ठहरे ।
3. विशेषकर दूसरे दिन प्रसिद्ध गाँव, सडक और जानकार लोगों के गाँवों को छोड़कर चले ।
4. इस कारण प्रथम रात्रि के चार कोस और दूसरे दिन के पन्द्रह कोस चलने पर भी दूसरी रात्रि टंकारा से दस कोस दूरी के गाँव में पहुँचे और वहाँ हनुमान्-मन्दिर में ठहरे ।
5. तीसरे दिन खोजने वाले निकले हैं ऐसा समाचार मिला और वे सायला के लिए चल पड़े ।

ऋषि-वाक्य के अनुसार सम्भावना

प्रथम : प्रथम रात्रि को देर तक प्रतीक्षा करने से उसी रात्रि में तो उन्हें ढूँढ़ने के लिए निकलने की सम्भावना कम थी। करसन जी तिवाड़ी के प्रसिद्ध व्यक्ति होने से टंकारा विस्तार (एक्सटेंशन) के आस-पास के गाँव के लोग मूलशंकर को पहचानते होंगे तथा दूसरे गाँव के ब्राह्मण और सम्बन्धी भी पहचानते होंगे। इससे निपटने के बहाने से निकलने का एक मात्र यही उपाय था कि मौरवी राज्य की सीमा पार कर वांकानेर राज्य की सीमा में चले जाएँ । स्वामीजी को यही अभिप्रेत था ।

ऋषि ने लिखा है कि - ''**चार कोस पर एक ग्राम था वहाँ जाकर रात्रि को ठहर कर...**'' । टंकारा से चार कोस चलने पर मौरवी राज्य की सीमा पार हो जाती हो ऐसे केवल पूर्व की ओर के ही गाँव हैं। शेष तीनों दिशाओं पर आठ-दस या अधिक कोस तक मौरवी राज्य की सीमा है और यह सब राजस्व व्यवस्था की दृष्टि से टंकारा के अन्तर्गत है । अर्थात् ये सब करसनजी व मूलशंकर से भी परिचित गाँव थे। इसलिए अनुमान होता है कि टंकारा की पूर्व दिशा के वांकानेर-द्वार से निकल कर इसी दिशा में आगे बढ़े तो तीन या चार कोस की दूरी पर वांकानेर राज्य के गाँव आ जाते हैं तथा उस राज्य की सीमा में पहुँचा जा सकता है। इसलिए मूलशंकर

ने टंकारा से पूर्व दिशा से निकल कर चार कोस दूर वांकानेर राज्य के किसी गाँव में रात बिताई यही सम्भावना अधिक उचित है, क्योंकि उनके गन्तव्य स्थान सायला जाने की दिशा और रास्ता भी वही था ।

दूसरे दिन वांकानेर राज्य के गाँव में भी ढूँढ़ने पर पकड़े न जाएँ, इस सावधानी के लिए मुख्य मार्ग छोड़कर इधर-उधर चलते हुए पन्द्रह कोस की यात्रा कर ली । इसमें प्रथम रात्रि के चार कोस की यात्रा भी मिला लें तो 19 कोस चलने पर भी टंकारा से दस कोस की दूरी के गाँव तक ही पहुँचे और वहाँ हनुमान् के एक मन्दिर में ठहरे ।

तीसरे दिन सायला के लिए चल पड़े । यही सम्भावना युक्ति-युक्त और आत्मकथा से मेल खाती है ।

द्वितीय : सायला जाने के निश्चय का किसी अन्य को पता नहीं था इसलिए पूर्व दिशा में उसी रात को तुरन्त ढूँढ़ने निकलने की सम्भावना भी नहीं थी । इसलिए पश्चिम में उल्टे रास्ते चलने की आवश्यकता ही नहीं थी ।

तृतीय : भौगोलिक दृष्टि से पश्चिम में चार कोस जाकर दूसरे दिन सायला जाने के लिए फिर पूर्व में आना जरूरी है । इसलिए दक्षिण या उत्तर दिशा पार करना आवश्यक थी और इन दोनों दिशाओं में यदि टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर भी चलते तो भी टंकारा के अन्तर्गत पूर्वोक्त आठ-दस कोस के सब गाँव आ जाते । इन गाँवों में परिचित होने से या करसनजी के जमेदार पद पर रहने के कारण इन गाँवों के सिपाहियों को भी सूचना दे दी गई होगी । इसलिए पकड़े जाने का पूरा भय था । विशेषकर दूसरे दिन तो ढूँढ़ने वालों का अधिक भय था । इसलिए पूर्व दिशा से निकलकर आगे बढ़कर मौरवी अर्थात् टंकारा के अन्तर्गत गाँवों की सीमा पार कर वांकानेर राज्य के अपरिचित व्यक्तियों के गाँवों में प्रथम रात्रि का ठहरना युक्ति-संगत होने से टंकारा से पश्चिम की ओर जाने की कल्पना करना युक्ति-युक्त नहीं है ।

रामपुर की मिथ्या कल्पना की समीक्षा

1. अब रामपुर ठहरने की समीक्षा करे तो प्रथम कहना होगा कि भौगोलिक दृष्टि से रामपुर टंकारा से वायव्य दिशा में है तथा इसकी टंकारा से दूरी केवल दो-अढ़ाई कोस है। इसलिए देवेन्द्र बाबू के अनुसार प्रथम चार कोस पश्चिम में जाकर फिर दूसरे दिन प्रातःकाल वापिस आकर टंकारा से अति निकट और अति परिचित (टंकारा के उपनगर जैसा) रामपुर गाँव में विश्राम करना सम्भव नहीं है।
2. रामपुर से सायला जाने के लिए टंकारा की बग़ल से ही गुजरना होता है। अतः दूसरे दिन यह होना सम्भव नहीं है।
3. ऋषि की आत्मकथा के अनुसार प्रथम रात्रि टंकारा से चार कोस की दूरी के गाँव में ठहरे, परन्तु रामपुर केवल दो ही कोस दूर होने से वहाँ जाना शक्य नहीं है।
4. दूसरी रात्रि टंकारा से दस कोस दूर हनुमान् के मन्दिर वाले गाँव में ठहरे थे, इसलिए टंकारा से दो कोस की दूरी पर हनुमान् के मन्दिर वाले रामपुर गाँव में उनका रात्रि विश्राम सम्भव ही नहीं है।

इस प्रकार प्रभुराम आचार्य द्वारा अनुश्रुति से सुनी बात तथा देवेन्द्र बाबू का तर्क, दोनों ऋषि की आत्मकथा से स्वतः निर्मूल हो जाते हैं। ऋषि के उपर्युक्त शब्दों से ही स्पष्ट है कि वे टंकारा से दस कोस दूर के गाँव में हनुमान् के मन्दिर में ठहरे थे। इससे रामपुर का हनुमान् मन्दिर इस प्रसंग में नहीं आता।

रामपुर (रामपर) का हनुमान् मन्दिर : यहाँ भ्रम-निवारणार्थ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मैं एकाधिक बार रामपुर गया हूँ और इन पंक्तियों के लिखने से पूर्व रामपुर के हनुमान् के मन्दिर का सूक्ष्म निरीक्षण करने के लिए मैं 5 नवम्बर, 1984 को भी वहाँ गया था। मेरे साथ टंकारा आर्यसमाज के मन्त्री हसमुख भाई परमार भी थे। इस मन्दिर का परिचय इस प्रकार है -

यह मन्दिर बड़े रामपुर गाँव के बाहर स्थित है । मन्दिर के प्रधान देवता का नाम नाराचणिया हनुमान् है । मन्दिर के बीच के स्थान में बड़ी मूर्ति है । स्थान इतना छोटा है कि यहाँ बैठने की जगह भी नहीं है । इसलिए उसमें सोने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती । इसकी बग़ल में ऐसा ही छोटा-सा एक दूसरा राम-मन्दिर भी है । उपर्युक्त वर्णन वाले मन्दिर को बड़ा या विश्राम-लायक समझना युक्ति-संगत नहीं है ।

हम जब वहाँ गए थे तब इस मन्दिर के पुजारी मोहनलाल तुलसीदास लश्करी थे । इनसे मन्दिर का इतिहास पूछने पर कोई विशेष जानकारी नहीं मिली । उसका आगे का भाग तथा विश्राम की सुविधा तो 2039 वि० में ही बनी है और दाता का नाम युक्त एक शिलालेख भी लगा है । अतः देवेन्द्र बाबू के अनुसार यहाँ रहने की सुविधा होना और मन्दिर का बड़ा होना - ये दोनों बातें तथ्यों से सिद्ध नहीं होती हैं । उपर्युक्त विवेचना का सारांश यही है कि मूलशंकर का गृह-त्याग करके टंकारा की पश्चिम की ओर जाना सम्भव नहीं है और रामपुर के हनुमान् के मन्दिर से भी इस घटना का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

फिर ऋषि कहाँ ठहरे थे ? : अब प्रश्न यह है कि निष्क्रमण की पहली रात्रि ओर दूसरी रात्रि को ठहरने के गाँव कौन-कौन से हो सकते हैं ।

प्रथम रात्रि के गाँव के विषय में जानकारी प्राप्त करना प्रायः असम्भव है, क्योंकि मौरवी राज्य के सीमान्त अथवा वांकानेर राज्य के कुछ गाँव टंकारा से चार कोस पूर्व दिशा में हैं और ऋषि ने इस गाँव के विषय में कुछ विशेष निर्देश नहीं किया है ।

दूसरी रात्रि वाला गाँव टंकारा से पूर्व दिशा में दस कोस दूर हनुमान् के मन्दिर वाला होना चाहिए । इसी गाँव की खोज करने का हमने निरन्तर प्रयत्न किया है । जब मेरा ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी विषयक यह शोध-कार्य विवरण 1985 ई० में 'आर्यजगत्' साप्ताहिक में धारावाहिक नव

किस्तों में तथा कुछ संशोधन के साथ 'वेदवाणी' मासिक पत्रिका के जनवरी 1986 ई० के 'दयानन्द विशेषांक–3' में प्रकाशित हुआ था तब तक इस गाँव की खोज का हमारा कार्य अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचा था। मगर हमें विश्वास था कि आगे चलकर इसमें हमें सफलता मिलेगी। हमारे विचार से जब तक विश्वसनीय जानकारी न मिल जाए, तब तक कुछ लिखना ठीक नहीं; क्योंकि ऋषि–जीवनी जैसे पवित्र विषय में एक और विवाद खड़ा करना गुरु–द्रोह के तुल्य है। अब ऋषि की आत्मकथा के अनुसार इस गाँव की खोज सम्बन्धी हमारा कार्य पूरा हो गया है। अतः इस के सम्बन्ध में पूरी जानकारी इस पुस्तक में आगे प्रकट करूँगा।

• • •

: 10 :

ऋषि के महाभिनिष्क्रमण के बाद दूसरी रात्रि का निवास-स्थान कौन-सा था ?[1]

ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी की लेखमाला में मैंने मूलशंकर के टंकारा से निष्क्रमण विषयक विवेचना की थी। वहाँ मैंने ऋषि की आत्मकथानुसार द्वितीय रात्रि के ठहरने के स्थान का शोध चल रहा है ऐसा निर्देश किया था। उस स्थान का अन्वेषण करने हेतु मैं प्रयास करता रहा । विभिन्न स्थलों को देखकर ऋषि की आत्मकथानुसार वह कौन-सा स्थल हो सकता है, इस सम्बन्ध में प्राप्त हुई जानकारी का विवरण निम्नलिखित है -

आत्मकथोक्त वर्णन

सर्वप्रथम हम ऋषि की लिखित आत्मकथा में वर्णित पंक्तियों को देखें, यथा -

''फिर गुपचुप संवत् 1903 के वर्ष घर छोड़ के सन्ध्या के समय भाग उठा । चार कोस पर एक ग्राम था वहाँ जाकर रात्रि को ठहर कर दूसरे दिन प्रहर रात्रि से उठ के 15 कोस चला, परन्तु प्रसिद्ध ग्राम, सडक और जानकारी के ग्रामों को छोडकर बीच-बीच में नित्य चलने का प्रारम्भ किया । तीसरे दिन मैंने किसी राजपुरुष से सुना कि फसाने का लड़का घर छोड़ कर चला गया उसको खोजने के लिए सवार और पैदल आदि भी यहाँ तक आए थे ।'' (लिखित 'आत्मकथा', पृष्ठ 9)

---

1. मेरा यह लेख जनवरी 1987 के 'वेदवाणी दयानन्द विशेषांक-(4)' में छपा था । - (ले०)

पूना-व्याख्यान में निम्न पाठ है –

"मैं एक दिन सायं काल शौच जाने का निमित्त (बहाना) करके धोती साथ लेकर घर से निकल पड़ा । ... मैं एक समीप के गाँव में चला गया ... उसी रात को तड़के चार घड़ी रात रही तो मैं (गाँव से) निकल पड़ा और अपने गाँव से लगभग 10 कोस के अन्तर के एक गाँव में हनुमान् के मन्दिर में ठहरा । वहाँ से सायला जोगी (योगी) नाम का कोई पुरुष था उसके पास गया ।"[1]

इस प्रसंग का लिखित आत्मकथा की अपेक्षा पूना-व्याख्यान में कुछ अधिक स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है । आत्मकथा के इन दोनों उद्धरणों के सारांश रूप में निम्न बातें प्रदर्शित होती हैं -

1. सायला जाने का निश्चय था ।
2. प्रथम रात्रि टंकारा से चार कोस दूर के गाँव में ठहरे ।
3. प्रसिद्ध गाँव, सड़क और जानकार लोगों के गाँव छोड़कर चले ।
4. इस कारण प्रथम रात्रि के चार कोस और दूसरे दिन के पन्द्रह कोस चलने पर भी दूसरी रात्रि टंकारा से लगभग दस कोस दूरी के गाँव में पहुँचे ।
5. उसी गाँव के हनुमान् के मन्दिर में ठहरे ।
6. तीसरे दिन सायला के लिए चल पड़े और रात्रि तक पहुँच गये ।

प्रथम रात्रि निवास : उपर्युक्त बातों पर विचार करने से तो हमें प्रथम रात्रि के ठहरने के गाँव के विषय में कोई विशेष निर्देश प्राप्त नहीं होता है । इसलिए प्रथम रात्रि के गाँव की जानकारी प्राप्त करना सम्भव नहीं है । परन्तु इतना अनुमान कर सकते हैं कि टंकारा से निकल कर मूलशंकर

1. 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', पृष्ठ 437 । - (सं०)

चार कोस की दूरी पर मौरवी राज्य के सीमान्त अथवा वांकानेर राज्य के किसी गाँव में ठहरे होंगे । इसकी विशद विवेचना हम पूर्व प्रकरण में कर चुके हैं ।[1]

दूसरी रात्रि वाला गाँव

दूसरी रात्रि वाले गाँव में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए -

1. यह गाँव टंकारा से लगभग दस कोस की दूरी पर होना चाहिए । अर्थात् टंकारा से वांकानेर सात या आठ कोस के अन्तर पर है । इसलिए वांकानेर से प्रायः दो कोस की दूरी पर यह गाँव होना चाहिए ।
2. इस गाँव में पुराना हनुमान् का मन्दिर होना चाहिए ।
3. वांकानेर से सायला जाने वाली प्रसिद्ध सड़क पर न होकर अग़ल-बग़ल में होना चाहिए ।

सर्वप्रथम वांकानेर की अग़ल-बग़ल में 150-200 वर्ष पुराने हनुमान् के मन्दिर कहाँ-कहाँ हैं, उनकी जानकारी प्राप्त करने पर मुझे निम्न छः स्थलों का संकेत प्राप्त हुआ -

(1) मोलडी (2) खाखरिया (3) लीलाधरिया (4) पंचासिया (5) भंगेश्वर और (6) लुणसरिया ।

उपर्युक्त छः स्थलों में से ऋषि को दूसरी रात्रि ठहरने का सोभाग्य किस गाँव और जिस हनुमान् के मन्दिर को प्राप्त हुआ था, इनकी कसौटी हम ऋषि की आत्मकथा के शब्दानुसार करें ।

(1) मोलडी : 'आर्यजगत्' में प्रकाशित ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी विषयक लेखमाला पढ़कर चोटीला (जिला सुरेन्द्रनगर) के कुछ आर्य भाईयों ने छोटी मोलडी (छोटी मोलडी और बड़ी मोलडी - ये दो गाँव हैं) गाँव

---

1. पूर्व प्रकरण का यह अंश विषय की विवेचना में प्रमाणों की आवश्यकता होने से यहाँ पुनरुक्त किया गया है । - (ले०)

में पुराने हनुमान् मन्दिर की सम्भावना होने की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था ।

मैं 27 अक्टूबर, 1985 को उक्त स्थलों से परिचित टंकारा के दिनेश भाई कटारिया को साथ लेकर वांकानेर गया । वहाँ से हम मोलडी गये । मन्दिर के पुजारी हरिभाई और कोठारी शामळदास से मिले और मन्दिर के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त की । यहाँ सम्पूर्ण विवरण को देना अनावश्यक समझकर संक्षेप से इतना ही बताना पर्याप्त होगा कि छोटी मोलडी गाँव का यह हनुमान् का मन्दिर बहुत पुराना है और सायला जाते प्रसिद्ध सड़क पर पड़ता है । परन्तु यह वांकानेर से प्रायः 10 कोस की दूरी पर है । अर्थात् टंकारा से 18 कोस के अन्तर पर है । इसलिए ऋषि की 'पूना-प्रवचन' में कथित आत्मकथानुसार - "**अपने गाँव (टंकारा) से लगभग दस कोस के अन्तर के एक गाँव में हनुमान् के मन्दिर में ठहरा ।**" - यह मोलडी गाँव में पुराना हनुमान् मन्दिर होते हुए भी यह गाँव टंकारा से 10 कोस की दूरी पर नहीं है, बल्कि 18 कोस अर्थात् लगभग द्विगुना अन्तर पर है । इतना ही नहीं, यह गाँव सायला जाने की प्रसिद्ध सड़क पर स्थित है । इसलिए यह स्थल दूसरी रात्रि के निवास का स्थान नहीं हो सकता ।

(2) खाखरिया हनुमान् : यह वांकानेर से केवल दो ही किलोमीटर की दूरी पर है । पास में राजवड़ला नामक गाँव भी दो किलोमीटर की दूरी पर है । यह खाखरिया नाला (गुजराती में 'वोकळो' अथवा 'वोंकळो') के किनारे पर जंगल में स्थित है । इस मन्दिर के पुजारी मणिचेतन रघचेतन हैं । पुजारी से जानकारी प्राप्त करने पर यह ज्ञात हुआ कि यह मन्दिर केवल 50 वर्ष पूर्व ही बना है । यह स्थल भी ऋषि की आत्मकथा के "**एक गाँव में हनुमान् के मन्दिर में ठहरा**" - इस शब्दानुसार गाँव में नहीं, अपितु जंगल में है । और दूसरा 50 वर्ष पुराना होने से मूलशंकर के टंकारा निष्क्रमण के समय में यह मन्दिर था ही नहीं । इसलिए ऋषि की दूसरी रात्रि ठहरने का स्थान यह नहीं हो सकता ।

(3) लीलाधरिया हनुमान् (4) पंचासिया हनुमान् (5) भंगेश्वर हनुमान् : इन तीनों गाँवों के हनुमान् मन्दिर पुराने हैं। परन्तु टंकारा से वांकानेर के बीच में पड़ते हैं। एतदर्थ इनका अन्तर टंकारा से पांच या छः कोस से अधिक नहीं है। इसलिए इन तीनों स्थलों के हनुमान् मन्दिरों को भी ऋषि की दूसरी रात्रि ठहरने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता।

(6) लुणसरिया : वांकानेर से सायला जाने के रास्ते में प्रायः दो कोस की दूरी पर केराला (गुजराती में 'केराळा') नामक गाँव है। और उसकी बग़ल में लुणसरिया नामक गाँव है। इन दोनों गाँवों के बीच में मच्छु नदी पड़ती है। हम 27 अक्टूबर, 1985 के दिन मोटर साइकिल से प्रथम केराला गए। यहाँ कुछ जानकारी प्राप्त की। यहाँ से नदी के उस पार सामने लुणसरिया गाँव और हनुमान् का मन्दिर दिखाई देता है, उसकी ओर चल पड़े। कड़ी धूप, दोपहर का एक बजे का समय, अकाल के कारण सूखी नदी, नदी में गोल और नुकीले पत्थरों से भरा रास्ता था। मोटर साइकिल चल नहीं सकती थी। इसलिए पैदल चलकर नदी पार करके हम लुणसरिया पहुँचे।

हनुमान् मन्दिर : लुणसरिया छोटा-सा गाँव है। उसके द्वार पर ही शमी वृक्ष के नीचे, मच्छु नदी के किनारे पर हनुमान् का मन्दिर स्थित है। हम वहाँ पहुँचे तब कुछ लोग मन्दिर के वृक्ष की छाया में बैठे हुए थे। उन्होंने हमें बड़ा आदर दिया। हनुमान् मन्दिर को देखकर अधिक जानकारी के लिए वे लोग हमें गाँव में स्थित राम-मन्दिर में ले गए। वहाँ एक 80 वर्षीय वृद्ध सज्जन नवलसिंह बावाजी झाला से हमारी भेंट करवाई। उनकी जानकारी के अनुसार हनुमान् का यह मन्दिर 'राणीमां-ना हनुमान्' के नाम से पहचाना जाता है। इसका निर्माण प्रायः 300 वर्ष पूर्व हुआ था। परन्तु पुराना मन्दिर मच्छु नदी का बांध टूटने पर आई बाढ़ के समय गिर गया था। बाद में मुम्बई निवासी चन्द्रभागा बहिन ने अपने दिवंगत पति पोपटलाल कोटक की स्मृति में पाँच हजार रुपये देकर 14 जून, 1977 के दिन इसका जीर्णोद्धार करवाया है। एतद्-विषयक शिलालेख भी इस मन्दिर में लगा हुआ है।

नवलसिंह ने बताया कि इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी राजकोट से प्रकाशित 'राणीमां' की जीवनी से प्राप्त हो सकती है ।

मैंने राजकोट से यह पुस्तक मँगा कर पढ़ी । पुस्तक में 'राणीमां' की जीवनी दी गई है । राणीमां का जन्म 1800 वि० में लुणसरिया गाँव में हुआ था ।[1] उनके पिता गोपालन का कार्य करते थे । वे गोपाल या 'गोवाळ' (सौराष्ट्र में 'भरवाड़' नाम से प्रसिद्ध) जाति के था ।

पुस्तक में भक्तमाला की तरह राणीमां के विषय में कई चमत्कारिक बातें और किंवदन्तियाँ हैं । इसमें अपने विषय से हनुमान् के मन्दिर से सम्बन्धित तथ्य यह प्राप्त होता है कि हनुमान् की मूर्ति प्रथम मच्छु नदी के बीच में थी । बाद में राणीमां ने लुणसरिया गाँव के द्वार के पास नदी के किनारे पर मन्दिर बना कर उसकी स्थापना की । उस समय से यह 'राणीमां-ना हनुमान्' के नाम से प्रसिद्ध है । इत्यादि ।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवरण का सारांश है कि —

1. लुणसरिया का यह हनुमान् मन्दिर पुराना है और ऋषि के जन्म से पूर्व बना हुआ है । यह 'राणीमां' की जीवनी में लिखित रूप में होने से प्रमाणित है ।
2. लुणसरिया गाँव टंकारा से लगभग दस कोस की दूरी पर है, जो ऋषि की आत्मकथा के शब्दानुसार मेल रखता है ।
3. लुणसरिया गाँव सायला जाने वाली प्रसिद्ध सड़क पर नहीं है । नदी के उस पार होने से बग़ल में पड़ता है । यह भी आत्मकथानुसार युक्ति संगत है ।
4. वांकानेर से सायला जाने के लिए चोटीला होकर जाने का एक प्रसिद्ध

---

1. कालीदास महाराज रचित 'राणीमां' (गुजराती जीवनी), पृष्ठ 6, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक : करमसी राघवभगत, नकलंक मन्दिर, राजकोट, - (ले०)

मार्ग है। इस प्रसिद्ध मार्ग को छोड़कर लुणसरिया से सीधा सायला जाने का एक अप्रसिद्ध रास्ता है, जो ऋषि के अप्रसिद्ध रास्ते में चलने के आत्मकथोक्त वर्णन से सुसंगत है।

5. लुणसरिया से सायला प्रायः 15 कोस के अन्तर पर होने से तीसरे दिन (15 कोस चलकर) मूलशंकर का सायला पहुँचना भी युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

6. उपर्युक्त सब बातें, प्रमाण, युक्ति और ऋषि के शब्दानुसार विचार करने से निष्कर्ष निकलता है कि दूसरी रात्रि ठहरने का सौभाग्य लुणसरिया गाँव में स्थित 'राणीमां-ना हनुमान्' मन्दिर को प्राप्त होता है।

अन्त में : दूसरी रात्रि का निवास स्थान विषयक शोध कार्य में मैंने पूर्वोल्लिखित सम्भावित गाँव और हनुमान् के मन्दिरों में घूमकर सब की विस्तृत जानकारी प्राप्त की है, जो विस्तार-भय से यहाँ प्रस्तुत करना अपेक्षित नहीं है। अतः यहाँ केवल सम्बन्धित तथ्यों पर ही विचार प्रस्तुत किया गया है।[1]

• • •

1. इस शोध कार्य में टंकारा के उत्साही आर्य दिनेश भाई कटारिया ने मेरे साथ घूमकर सहयोग दिया। दूसरा, वांकानेर के डॉ० देवराज नावानी (भगवानदेव आर्य के छोटे भाई) ने अपनी मोटर साइकिल के साथ अपने पुत्र मनोज को हमारे साथ भेजकर सहयोग प्रदान किया। एतदर्थ इन दोनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। - (ले०)

: 11 :

लाला भक्त (भगत) योगी नहीं थे

देवेन्द्रनाथ ने सायला निवासी लाला भक्त (गुजराती में 'भगत'), उनके पूर्वज तथा परिवार का सुन्दर और विस्तृत परिचय दिया है तथा यह भी सिद्ध किया है कि लाला भक्त योगी नहीं थे। फिर भी कई वर्तमान लेखकों में लाला भक्त के योगी होने का भ्रम पैदा हुआ है। इसका कारण ऋषि दयानन्द के पूना के व्याख्यानों में प्रकाशित एक वाक्य हो सकता है, जिसकी विशेष विवेचना देवेन्द्र बाबू ने नहीं की है।

पूना-प्रवचन का वाक्य : यहाँ हम 'पूना-व्याख्यान' ('उपदेश मञ्जरी') का वह वाक्य दे रहे हैं – **"वहाँ से सायला जोगी (योगी) नाम का कोई पुरुष था उसके पास गया, परन्तु वहाँ मुझे शान्ति नहीं मिली। लाला भगत इस नाम का कोई योगी है, ऐसा लोग कहते थे। इसलिए मैं उधर (उसके पास) गया।"**[1]

इसके पश्चात् एक वैरागी से भेंट होने और उसके द्वारा अंगूठी आदि ले लिए जाने का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् वे पुनः सायला प्रसंग कहते हैं।

"लाला भक्त के पास जाकर मैं योग-साधन करने लगा। रात्रि में एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, उस (वृक्ष) पर पक्षी घू-घू करने लगा। उसे सुनकर भूत का भय मेरे मन में उत्पन्न हुआ और मैं वापस मठ में आ गया।" (वही)

---

1. 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', पृष्ठ 437 – (सं०)

उपर्युक्त वाक्यों में लाला भक्त को योगी कहा गया है तथा उनके निकट जाकर योग-साधन करने की बात भी कही गई है। परन्तु इन वाक्यों के सन्दर्भ में पूर्व सम्बन्धित घटनाओं को देखें तो ज्ञात होता है कि मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) ने अमर होने के लिए अपने मित्रों की सलाह से योगाभ्यास करने का विचार किया था और इसी शोध में उन्होंने गृहत्याग किया था। उस समय सामान्य जनता किसी मन्दिर, मठ या ऐसा ही कोई स्थान[1] आदि बनाकर परम्परागत भक्ति-आराधना करने वाले भक्तजनों के नाम पर कई चमत्कारपूर्ण बातें जोड़ दिया करते थे और उन्हीं भक्तों को ही 'योगी' के रूप में समझ लेते थे।

इसकी पुष्टि ऋषि दयानन्द के निम्न शब्दों से होती है –

"**लाला भगत इस नाम का कोई योगी है, ऐसा लोग कहते थे।**" जैसे भगत (भक्त) को योगी माना जाता था इसी प्रकार राम-नाम जपना, माला फेरना, भजन गाना आदि कार्य भी सामान्य लोगों की दृष्टि में योगाभ्यास के अन्तर्गत माने जाते थे। इसलिए यहाँ प्रचलित अर्थ में ही लाला भक्त को 'योगी' कहा गया है। यदि वे वस्तुतः योगी होते और पातञ्जल अष्टांग योग के द्वारा साधना करते होते तो मूलशंकर की इच्छा वहीं पूरी हो जाती। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, यह आत्मकथा से ही प्रकट होता है।

"**परन्तु वहाँ मुझे शान्ति नहीं मिली।**" - ऋषि का यह वाक्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे लाला भक्त के योगी होने और योगसाधना करने के भ्रम का निवारण हो जाता है। जिस योग की आकांक्षा लेकर मूलशंकर वहाँ गए थे, वैसा उन्हें लाला भक्त में नहीं मिला यह स्पष्ट हो जाता है, और इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि लाला भक्त वास्तविक अर्थों में योगी नहीं थे।

ऋषि की लिखित आत्मकथा के वाक्य : यदि लाला भक्त योगी होते

---

1. जिसे गुजराती में 'जगा' अथवा 'जग्या' कहा जाता है। - (सं०)

और जिज्ञासुओं को योगाभ्यास सिखाते होते तो मूलशंकर इनके शिष्य बनकर इनसे दीक्षा लेते, परन्तु ऐसा नहीं हुआ ।[1] इसके विपरीत ऋषि दयानन्द की स्व-लिखित आत्मकथा देखें । ऋषि ने उसमें लिखा है **– "फिर लाला भगत की जगह जो कि सायले शहर में है वहाँ बहुत साधुओं को सुनकर चला गया । वहाँ एक ब्रह्मचारी मिला । उसने मुझसे कहा कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ । उसने मुझको ब्रह्मचारी की दीक्षा दी और 'शुद्ध चैतन्य' मेरा नाम रखा ।"** (लिखित 'आत्मकथा', पृष्ठ 9)

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि लाला भक्त के योगी न होने का पता चलने पर मूलशंकर ने अन्य योगियों की तलाश आरम्भ की होगी तथा इन्हीं में से किसी से ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली होगी । इससे सिद्ध होता है कि पूना-व्याख्यान में लाला भक्त को योगी कहना लोक-प्रचलित मान्यता के अनुसार ही था, वास्तविक नहीं । अब तो ऋषि की आत्मकथा हस्तलिखित रूप में भी उपलब्ध है, जो पूर्णतया प्रामाणिक और विश्वसनीय है । यहाँ निम्नलिखित पंक्ति अंकित है **–**

"फिर लाला भगत की जगह जो कि सायले शहर में है वहाँ बहुत साधुओं को सुनकर चला गया ।" इससे सिद्ध होता है कि सायला में केवल लाला भक्त की जगह - मन्दिर में किसी साधु यात्री या योगी से मिलाप हो जाए, इसी सम्भावना से वे वहाँ गए थे । इससे लाला भक्त का योगी होना और योगसाधना का निर्देश करना आदि सिद्ध नहीं होता । वस्तुतः मूलशंकर ने तो वहाँ किसी ब्रह्मचारी से ही ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली थी । वैसे ऋषि की लिखित आत्मकथा में 'लाला भगत' ही लिखा है, उनके लिए 'योगी' शब्द को प्रयुक्त नहीं किया गया है ।

---

1. क्या यही तर्क ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि - ये दो योगी कि जिनके पास स्वामी दयानन्द ने चाणोद तथा अहमदाबाद में योगाभ्यास की रीति सीखी थी, उन पर भी नहीं लगाया जा सकता है ? प्रश्न विचारणीय है । - (सं०)

पूना-प्रवचन (उपदेश-मञ्जरी) की स्थिति : अब पूना-प्रवचनों के पन्द्रहवें व्याख्यान को देखें जो आत्मकथा प्रधान है। हम प्रथम निर्देश कर आए हैं कि 'पूना-प्रवचन' मूलतः हिन्दी में दिए गए थे, जिन्हें बाद में मराठी में लिखकर प्रकाशित किया गया। यह पूना-व्याख्यान भी पूर्ण नहीं है, सारांश मात्र है। इसलिए यह मानना तो अत्युक्ति ही होगी कि ऋषि के बोले हुए प्रत्येक वाक्य को शब्दशः लिख लिया गया है। इन व्याख्यानों का पाठ कई स्थानों पर त्रुटि पूर्ण भी है और कई स्थानो पर वाक्य-रचना पूर्वापर सम्बन्ध से रहित भी है। इसका प्रथम सम्पादन पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने प्रत्येक पृष्ठ पर टिप्पणी देते हुए किया है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी पूना-प्रवचनों का हिन्दी में से गुजराती में भाषान्तर किया है, इसलिए इसका भी इन प्रवचनों के बारे में ऐसा ही अनुभव है।

आत्मकथा के प्रवचन में ऊपर उद्धृत वाक्य को ध्यानपूर्वक देखें तो यह वाक्य भी पूर्वापर सम्बन्ध से रहित है। क्योंकि प्रथम सायला जाने का लिखा और वहाँ का कुछ वर्णन करने से पूर्व यह लिख दिया गया है कि वहाँ पर मुझे शान्ति नहीं मिली। वस्तुतः यह तो अन्त में आना चाहिए था। फिर लोगों से सुनने का लिखा और बीच में वैराग्य वाला पूरा प्रसंग लिखा, फिर बाद में योगसाधना करने और घू-घू की आवाज से डरने का वर्णन किया।

ऐसे अन्य भी कई उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन्हें विषयान्तर के भय से हम यहाँ विस्तार पूर्वक नहीं लिखते हैं। पूना-व्याख्यान की भाषा का एक-एक शब्द या वाक्य ऋषिकृत है, यह मानना अतिशयोक्ति होगी। इसलिए लाला भक्त का योगी होना आदि का प्रसंग व्याख्यान-सारांश लिखने वाले लेखक के शब्द भी हो सकते हैं, क्योंकि यह भी सम्भव है कि लेखक ने भक्त शब्द को योगी का पर्याय मान लिया हो या फिर अनुवादक ने भक्त शब्द का अनुवाद योगी कर दिया हो। तथापि निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

हमारे यहाँ ऐसे विद्वानों की भी कमी नहीं है जिनकी मान्यता है कि ऋषि के नाम पर छपे ग्रन्थों में एक-एक शब्द और वाक्य उनका ही है। इसलिए उन्हीं को दृष्टि में रखकर मैंने पूर्व पंक्तियों में इस पन्द्रहवें व्याख्यान के एक-एक वाक्य को लेकर यह विवेचना की है। इससे भी सिद्ध होता है कि लाला भक्त योगी नहीं थे।

एक और युक्ति : लाला भक्त का मूल नाम लालजी था। उनके पीछे लगा 'भक्त' शब्द ही उनके योगी होने का खण्डन करता है; क्योंकि भक्त और योगी में स्पष्ट अन्तर होता है। दोनों की साधना के मार्ग भी प्रायः पृथक् ही होते हैं। भक्त गण नाम-जप, भजन-गान, कण्ठी-माला-तिलक धारण तथा मूर्तिपूजन आदि कर्मों में लिप्त रहते हैं और गृहस्थी भी होते हैं। लाला भक्त की जीवनी देखने से ये सब लक्षण उनमें मिल जाते हैं। देवेन्द्र बाबू ने इनका विस्तार से परिचय दिया है और स्पष्ट लिखा है कि - "लाला भक्त वास्तव में योगी न थे।"[1] उन्होंने वहाँ एक विशेष बात यह लिखी है कि (जिनकी चर्चा हम टंकारा के जीवापुर मुहल्ले विषयक प्रकरण में कर आए हैं वे) जीवा मेहता लाला भक्त के पूर्वज थे अर्थात् लाला भक्त जीवा मेहता के वंशज थे।

मूलशंकर का सायला निवास : जब हम लाला भक्त, सायला और ऋषि जीवन के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं तब हमें श्रीकृष्ण शर्मा लिखित पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश-परिचय' की निम्न पंक्तियाँ ध्यान में आती हैं -

"लाला भक्त के मन्दिर के पुराने रिकॉर्ड से मुझे मालूम हुआ है कि महर्षि वहाँ कार्तिकी संवत् 1902 के आषाढ़ और श्रावण मास में लगभग डेढ़ मास तक ठहरे थे।" (पृष्ठ 28)

ऋषि की जन्म तिथि भाद्रपद शुक्ला नवमी की सिद्धि के प्रसंग में श्रीकृष्ण शर्मा ने उक्त पंक्तियाँ लिखी हैं।

1. द्रष्टव्य : 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', पृष्ठ 61 - (ले०)

प्रथम : विचार करें तो हम यह जानते हैं कि यदि किसी अन्वेषक को सौ या सवा सौ वर्ष पुराना मूल्यवान रिकॉर्ड प्राप्त हो जाता है तो स्वभावतः वह यह जानने का यत्न करता है कि इस रिकॉर्ड का आरम्भ कब से हुआ। अन्वेषक की वाञ्छित सामग्री रिकॉर्ड के किस पृष्ठ पर अंकित है तथा इस रिकॉर्ड के प्रासंगिक स्थलों की प्रतिलिपि अत्यन्त सावधानी पूर्वक करता है, परन्तु श्रीकृष्ण शर्मा ने यहाँ ऐसा कुछ नहीं किया।

दूसरा : यदि हम यह भी मान लें कि उक्त रिकॉर्ड में वर्ष तथा मास का उल्लेख मिला, परन्तु तिथि का उल्लेख न मिलने से यह ज्ञात कैसे होगा कि स्वामीजी वहाँ डेढ़ मास ठहरे थे। डेढ़ मास शब्द से पहले प्रयुक्त 'लगभग' शब्द ही अनिश्चितता दर्शाता है। क्या अनिश्चितता सूचक इस 'लगभग' शब्द का प्रयोग मूल रिकॉर्ड में किया गया है ?

तीसरा : यदि विचार करें तो ज्ञात होता है कि प्रायः मन्दिरों में जो प्रतिदिन साधु, यात्री और दर्शनार्थी बाहर के गाँवों से आते रहते हैं, उन सब का रिकॉर्ड रखने की प्रथा किसी मन्दिर में नहीं है। सायला का यह मन्दिर तो बहुत प्रख्यात था। इसलिए रेल यात्रा आरम्भ होने से पहले द्वारिका की ओर जाने वाले अन्य प्रान्तीय यात्रियों के संघ भी इसी ओर से जाते होंगे। इसलिए यहाँ बड़ी भीड़ रहती होगी। क्या उन सब यात्रियों का रिकॉर्ड रखना सम्भव था ?

चौथा : एक सदी पूर्व सौराष्ट्र में इतनी निरक्षरता थी कि एक गाँव में दो-तीन से अधिक साक्षर व्यक्तियों का मिलना भी कठिन था। ब्राह्मण पौरोहित्य के लिए और बनियें व्यापार के लिए साधारण तौर पढ़ते थे। अतः उस काल में रिकॉर्ड लिखने वाले लिपिक ही कहाँ से प्राप्त होते और ऐसी स्थिति में प्रत्येक यात्री का प्रतिदिन का विवरण लिखना भी कैसे सम्भव होता ?

पांचवाँ : सामान्य बुद्धि से भी विचार करें तो ज्ञात होता है कि मूलशंकर घर से छिपकर निकले थे और वे अपनी व्यक्तिगत जानकारी किसी को देना भी नहीं चाहते थे। अतः यह कैसे सम्भव है कि उन्होंने अपना और अपने

गाँव का नाम मन्दिर के रिकॉर्ड में अंकित कराया । यदि सत्य नाम बताते तो प्रकट हो जाते और झूठा नाम लिखाते तो यह कैसे सिद्ध होगा कि रिकॉर्ड में अंकित नाम मूलशंकर का ही है । फिर वहाँ डेढ़ मास तक रहने में क्या प्रमाण है ?

छठाँ : इन पंक्तियों का लेखक 28 जून, 1984 को सायला गया था और उसने सब स्थानों को देखा । रिकॉर्ड के बारे में पूछने पर पता चला कि न तो रिकॉर्ड है और न रखा जाता है ।

निष्कर्ष : यह है कि सायला में बिताए गए समय से सम्बन्धित वर्ष और मास की बात कोई नई नहीं है । महेशप्रसाद मौलवी की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द कब और कहाँ' तथा 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' आदि ग्रन्थों में ये तथ्य पहले ही आ चुके हैं । वर्ष और मास के उल्लेख के अतिरिक्त तिथि का संकेत किसी ने भी स्पष्ट रूप से नहीं किया । इसलिए श्रीकृष्ण शर्मा ने भी नहीं लिखा । अतः ऋषि-जीवनी के गवेषकों को ऐसी पुस्तकों को आधार बनाने से पूर्व पर्याप्त सावधानी रखनी चाहिए । सायला विषयक श्रीकृष्ण शर्मा के उद्धरण के प्रसंग से यह प्रारम्भिक चर्चा की गई है ।

• • •

: 12 :

डॉ० जॉर्डन्स की बात का निराकरण

'Dayananda Sarasvati - His Life and Ideas' ('दयानन्द सरस्वती – हिज लाइफ़ एन्ड आइडियाज़') के लेखक डॉ० जे० टी० एफ० जॉर्डन्स (J.T.F. Jordens) ने अपने इस अंग्रेजी ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में यह कल्पना की है कि टंकारा के आस-पास मूर्तिपूजा को न मानने वाले जैन मत के ढूंढ़िया सम्प्रदाय का बाहुल्य था। इसी से मूलशंकर ने मूर्तिपूजा के विरोध सम्बन्धी संस्कार ग्रहण किए थे ।

डॉ० भवानीलाल भारतीय ने 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ के द्वितीय भाग के पृष्ठ 915 पर डॉ० जे० टी० एफ० जॉर्डन्स के उपर्युक्त कथन का निराकरण किया है,[1] तथापि कुछ और भी इस विषय में वक्तव्य है -

प्रथम तो यह जानना चाहिए कि टंकारा में तथा प्रायः सौराष्ट्र में भी ढूंढ़िया सम्प्रदाय की शाखा नहीं है, और न ही जैनों में इनके कोई अनुयायी हैं। जैनेतर लोगों को ढूंढ़िया सम्प्रदाय से परिचय भी नहीं है। अतः मूल के अभाव में वृक्ष की कल्पना ही निर्रथक है। जब ढूंढ़िया सम्प्रदाय ही

---

1. डॉ० भवानीलाल भारतीय ने अपने 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ के उक्त स्थल पर यह भी लिखा है कि - "वर्षों पूर्व ईसाई पादरी जे० एन० फर्कुहर ने अपनी पुस्तक Modern Religious Movements in India - 'मॉडर्न रिलिजियस मूवमेन्ट्स इन इण्डिया' (प्रथम संस्करण 1914, दिल्ली से पुनर्मुद्रित 1967 ई०) में भी कुछ इस प्रकार की धारणा व्यक्त की थी।" - (सं०)

नहीं तो फिर उसके प्रभाव का प्रश्न ही नहीं उठता ।[1]

टंकारा से अनभिज्ञ लोग दूर बैठकर ऐसी कल्पना कर सकते हैं, किन्तु वास्तविक जानकारी होने पर इस भ्रम का निवारण हो जाना चाहिए । टंकारा में स्थानकवासी जैन लोग अवश्य हैं, किन्तु वे मूर्तिपूजा के विषय में कट्टर नहीं हैं । वे स्वयं पौराणिक (हिन्दू) देवी-देवताओं के दर्शनार्थ मन्दिरों में जाते हैं और मिन्नतें भी माँगते हैं । ये लोग ढूंढ़िया सम्प्रदाय के कट्टर विरोधी हैं । इसका एक प्रसंग मैं स्वयं अपने संस्मरण के आधार पर यहाँ प्रस्तुत करता हूँ -

टंकारा में ढूंढ़िया सम्प्रदाय के साधु कभी नहीं आते । मैंने अपनी आयु में केवल एक ही बार टंकारा में इन साधुओं को देखा था । प्रायः 65-70 वर्ष पूर्व जब ये ढूंढ़िया साधु टंकारा में आए थे तब स्थानीय जैनों के दोनों सम्प्रदायों ने अर्थात् मूर्तिपूजक और स्थानकवासियों ने उनका प्रबल विरोध किया था और अपने स्थानों में उन्हें ठहरने तक नहीं दिया था । जब नगर में उन्हें कहीं भी ठहरने का स्थान नहीं मिला तो ये साधु टंकारा के पूर्व भाग में किसानों की बस्ती में स्थित राम-मन्दिर में ठहरे थे । जैन साधुओं का राम-मन्दिर में ठहरना और जैनेतर घरों से भिक्षा लाना यह टंकारा में प्रथम घटना थी और नगर में चर्चा का विषय भी बनी । लोग कुतूहलवश इन्हें देखने जाते थे । इन पंक्तियों का लेखक भी तब बालक ही था और अपने पिता के साथ इन साधुओं को देखने गया था । गुजराती में 'ढूंढ़िया' का अर्थ कुबड़ा होता है । इसलिए लोग यही समझते थे कि ये साधु कुबड़े होंगे और ऐसी ही धारणा लेकर हम भी उन्हें देखने गए थे ! यह प्रसंग यहाँ इसलिए दिया गया है कि ढूंढ़िया सम्प्रदाय का टंकारा में नामोनिशान नहीं था, अतः मूलशंकर का उनसे प्रभावित होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता ।

---

1. डॉ० भवानीलाल भारतीय ने 2009 ई० में हिण्डौन सिटी से प्रकाशित अपने 'नवजागरण के पुरोधा : महर्षि दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ के नवीन संस्करण के द्वितीय भाग के पृष्ठ 926 पर दयाल मुनि की इस बात का समावेश एक अतिरिक्त पाद-टिप्पणी के रूप में कर लिया है । - (सं०)

ऋषि के वाक्य : किसी व्यक्ति पर किसी का प्रभाव पड़ने के लिए उसका उससे सत्संग या सम्पर्क का होना आवश्यक है । यहाँ तो इस प्रकार की भी कोई साक्षी हमें नहीं मिलती है । वैचारिक प्रभाव पड़ने के लिए कभी-कभी साहित्य या सिद्धान्त का अध्ययन भी आवश्यक होता है । परन्तु यह सिद्ध बात है कि जैन लोग जैनेतरों को अपने ग्रन्थ पढ़ाने की बात तो दूर रही, छूने तक नहीं देते ।

सत्यार्थप्रकाश के द्वादश समुल्लास की अनुभूमिका में ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है – "**ये जैन लोग अपनी पुस्तकों अन्य मत वालों को देखने को, पढ़ने को या लिखने को भी नहीं देते ।**" ऋषि दयानन्द को भी जैन साहित्य प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था । इसी प्रसंग में उन्होंने लिखा है – "**बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री सेठ सेवकलाल कृष्णदास के पुरुषार्थ से (जैन) ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं ।**" (द्वादश समुल्लास की अनुभूमिका) ऐसी ही बात उन्होंने सत्यार्थप्रकाश की मुख्य 'भूमिका' में भी लिखी है ।

जब स्वामीजी के सत्यार्थप्रकाश लेखन-काल में यह स्थिति थी तो उनके शैशव काल में रहते समय जैन शास्त्रों का पठन तो सम्भव ही नहीं था, उनका प्रभाव पड़ना तो दूर रहा ।

ऋषि दयानन्द ने अपने सभी ग्रन्थों और वक्तव्यों में मूर्तिपूजा के प्रारम्भ और प्रचार के लिए जैन मत को ही उत्तरदायी ठहराया है । इसलिए इसके विपरीत मूर्तिपूजा से विरक्ति उत्पन्न करने में जैन मत की ढूंढ़िया शाखा का या स्थानकवासियों का प्रभाव बताना तर्क संगत नहीं है ।

ऋषि दयानन्द की मूर्तिपूजा से विरक्ति के वास्तविक कारण की विवेचना डॉ० भारतीय ने अपने ग्रन्थ के उक्त स्थल पर की ही है । अतः शब्दान्तर से यही बात की पुनरुक्ति न करता हुआ यहीं विराम लेता हूँ ।

• • •

परिशिष्ट : 1

1857 का स्वातंत्र्य संग्राम और स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द अपने नर्मदा तट के भ्रमण और गुरु स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचने के बीच वाले लगभग तीन वर्षों में कहाँ-कहाँ गये, क्या-क्या किया, इत्यादि विषय प्रायः अज्ञात ही है । स्वामीजी की आत्मकथा एवं उनके प्रायः सभी प्रमुख जीवनचरित्रकार इस विषय में मौन हैं । स्वामीजी का उत्कट स्वदेश-प्रेम, देशभक्ति के प्रबल भाव तथा राष्ट्रहित की ललक उनके जीवनचरित्रों में एवं उनके ग्रन्थों में प्रस्फुटित होती है । अतः स्वामीजी ने (1914 वि० - 1857 ई० के) स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लिया होगा, ऐसा अनुमान प्रायः किया जाता है । परन्तु इस विषय में आज पर्यन्त विद्वानों तथा लेखकों में मतभेद है । इसी कारण से इस विषय पर चर्चा-विचारणा होती रही है और लेख, पुस्तकें आदि भी प्रकाशित होती रहती हैं ।

मेरा शोध कार्य

1857 ई० के स्वातंत्र्य संग्राम में अगणित देशभक्त सेनानी बलिदान हुए । नाना साहेब ने अपना शेष जीवन सौराष्ट्र में आकर संन्यासी का गुप्त वेश धारण कर मौरवी (अथवा सिहोर) में व्यतीत किया । वे मौरवी के नगर-सेठ के घर पर रहे और वहाँ मच्छु नदी के तट पर स्थित शंकराश्रम में उनकी समाधि - मन्दिर भी प्रमाण रूप में विद्यमान है । इसलिए कई लोगों द्वारा ऐसा अनुमान कर लिया जाता है कि स्वामीजी ने अपनी जन्मभूमि टंकारा होने से नाना साहेब को मौरवी में गुप्तवेश में रहने को कहा होगा ।

मौरवी में शोध : इस विषय में संशोधन करने के लिए मैंने 1 जून, 1988 को मौरवी के वर्तमान नगर-सेठ से भेंट की। उन्होंने मुझे अपने पास विद्यमान नाना साहब के द्वारा कांच पर वाटर कलर से बनाये गये तात्या टोपे, माधवराव पेशवा, नाना साहेब पेशवा, बहादुर शाह ज़फ़र, अवध की बेगम (हज़रत महल) और विक्टोरिया के चित्र दिखाएँ। इन चित्रों को देखने के अतिरिक्त उनसे एतद्-विषयक अन्य कोई भी विशेष जानकारी मुझे प्राप्त नहीं हुई।

द्वारिका में शोध : स्वामीजी ने अपने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के 11वें समुल्लास में द्वारिका के मन्दिर की रक्षा के लिए वाघेर लोगों की वीरता का उल्लेख किया है। इस विषय में संशोधन करने के लिए मुझे 2 मार्च, 1988 का लिखा पण्डित क्षितिश वेदालंकार का एक पत्र मिला। मैंने इस विषय में जो शोध किया था उसका विवरण मैंने क्षितिश वेदालंकार को भेज दिया। उन्होंने इसे 'आर्यजगत्' के 8 मई, 1988 के अंक में अपने सम्पादकीय के साथ प्रकाशित किया, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है -

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के 11 वें समुल्लास में मूर्तिपूजा को अयुक्तियुक्त बताते हुए महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर के विध्वंस का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है –

> *जब ऊपर की छत टूटी, तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी। जब मूर्त्ति तोडी, तब सुनते हैं कि अठारह करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े, तब रोने लगे। कहा कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट, मार-कुट कर पोप और उनके चेलों को गुलाम बिगारी बना, पिसना पिसवया, घास खुदवाया, मलमुत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये। हाय ! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए ? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की ? जो म्लेच्छों के दाँत तोड़ डालते ! और अपना विजय करते। देखो ! जितनी मूर्त्तियाँ हैं, उतनी*

शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती ? पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की, परन्तु एक भी मूर्त्ति उनके शिर पर उड़के न लगी । जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्त्ति के सदृश सेवा करते, तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता ।

इसी के आगे ऋषि प्रश्नोत्तर के रूप में लिखते हैं —

***(प्रश्न)** द्वारिका जी के रणछोड़ जी, जिसने नर्सी महिता[1] के पास हुण्डी भेज दी और उसका ऋण चुका दिया, इत्यादि बात भी क्या झूठ है ?*

***(उत्तर)** किसी साहूकार ने रुपये दे दिये होंगे । किसी ने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्ण ने भेजे । **जब संवत् 1914 के वर्ष में तोपों के मारे मंदिर-मूर्त्तियाँ अंगरेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्त्तियाँ कहाँ गई थीं ? प्रत्युत् वाघेर लोगों ने जितनी वीरता की, और लड़े, शत्रुओं को मारा,** परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी । जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते । भला यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाय, उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें ?*

एकमात्र यही ऐसा सन्दर्भ है जिसमें ऋषि दयानन्द ने सन् 1857 (संवत् 1914) का स्पष्ट उल्लेख किया है । पूर्वापर ऐतिहासिक प्रसंगों से इस सन्दर्भ की पुष्टि होने पर सन् 1857 के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ सकता है ।

जामनगर के आयुर्वेदिक कॉलेज में प्राध्यापक और ऋषि दयानन्द के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक वर्षों तक शोध करने वाले प्रो० दयाल को सत्यार्थप्रकाश में उल्लिखित उक्त सन्दर्भ का हवाला देते हुए हमने पत्र लिखा था कि वे द्वारिका जाकर वाघेर लोगों के इतिहास की जानकारी प्राप्त करें और

---

1. गुजराती में शुद्ध नाम 'नरसिंह महेता' – (सं०)

यह खोज करें कि ऋषि ने सन् 1857 की जिस घटना की ओर संकेत किया है उस पर इतिहास से कुछ प्रकाश पड़ता है या नहीं । प्रो० दयाल जी ने हमारे पत्र के उत्तर में वाघेरों के इतिहास के सम्बन्ध में जो जानकारी भेजी है, वह यहाँ दी जा रही है –

द्वारिका में अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाले वाघेर लोग कौन थे ?

सत्यार्थप्रकाश में वर्णित द्वारिका की उस घटना से ऋषि दयानन्द का 1857 ई० से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? – इस विषय में मैंने वाघेर जाति की उत्पत्ति से वर्तमान तक का इतिहास, द्वारिका मन्दिर कब, कितनी बार, किसने तोड़ा आदि जानकारी एकत्र करने का प्रयत्न किया है । मैंने ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी के शोध कार्य में द्वारिका के पण्डों के चोपड़े (रजिस्टर) में माता-भाई-बहिन के नाम और अन्य बातों की जानकारी हेतु भी प्रयत्न किया । उस समय और तदनन्तर भी मैं द्वारिका एकाधिक बार हो आया हूँ । कुछ समय पूर्व वहाँ की पंचायत ने चिकित्सा शिविर रखा था, जिसमें मैं चिकित्सक के रूप में तीन दिन तक वहाँ रहा था । दो मास पूर्व हमारे कॉलेज में द्वारिका पुरातत्त्व विभाग की ओर से एक प्रदर्शनी आयोजित हुई थी । उनके वरिष्ठ अधिकारी डॉ० राव ने समुद्र में डूबी प्राचीन द्वारिका के पुराने अवशेष आदि भी ढूँढ़ निकाले हैं । कुछ इतिहासकार वर्तमान द्वारिका को ही प्राचीन द्वारिका मानते हैं । इस विषय में गुजरात के पत्र-पत्रिकाओं में पक्ष-विपक्ष में लेख प्रकाशित होते रहते हैं ।

वाघेर श्रीकृष्ण के द्वारिका बसाने से पूर्व समुद्र तट पर रहने वाली जाति थी । उसका मूल पुरुष कालयवन माना जाता है । अर्जुन को लूटने वाला काबा भी वाघेर था, ऐसा उल्लेख मिलता है । यह जाति समुद्र युद्ध में दक्ष थी । द्वारिका विस्तार ओखा मण्डल के नाम से ख्यात है । ओखा द्वारिका से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है । मण्डल के 40 गाँवों में वाघेर राजा की सत्ता थी ।

1459 ई० में महमूद बेगड़ा ने द्वारिका का विश्वप्रसिद्ध मन्दिर (रणछोड़जी का मन्दिर) जो 180 फुट ऊँचा था, उसका 40 फुट भाग तोड़ कर उस पर मस्जिद जैसी मीनार बनाई थी। मूर्ति तोड़ डाली थी। उसका एक टुकडा आज भी मन्दिर के चौक में विद्यमान है। इस लड़ाई में वाघेर राजा को हारकर भागना पड़ा था।

1573 ई० में अकबर गुजरात के बादशाह मुजफ्फरशाह को हराकर, कैद कर, उसे दिल्ली ले गया था। वह जेल से भागकर द्वारिका आया और उस समय द्वारिका के वाघेर राजा ने उसे आश्रय दिया था।

1624 ई० में वर्तमान मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था।

1804 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार का एक जहाज बम्बई से कराची जा रहा था। उसको वाघेर सरदारों ने लूटा और अंग्रेजों को मारा। बम्बई की कम्पनी सरकार ने नौ-सेना से द्वारिका पर चढ़ाई की, परन्तु वे वाघेरों से हारे। 1807 ई० में बड़ौदा नरेश गायकवाड़ की सहायता से कम्पनी सरकार ने वाघेरों से समझौता किया, परन्तु वाघेरों ने उसका पालन नहीं किया। 1816 में ओखा मण्डल के वाघेर राज्य को कम्पनी सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया। 6 नवम्बर, 1817 को कम्पनी ने यह राज्य बड़ौदा नरेश आनन्द राव गायकवाड़ को सौंप दिया। वाघेरों ने पुनः सत्ता-प्राप्ति का 1860 तक बार-बार प्रयास किया। 6 नवम्बर, 1820 को गायकवाड़ की सहायता से अंग्रेज सैन्य ने वाघेरों से जोरदार युद्ध किया। वाघेर हार गए।

1857 में कम्पनी सरकार अन्य स्थल पर युद्ध में रत होने के कारण गायकवाड़ की सहायता नहीं कर सकेगी, यह सोचकर द्वारिका में गायकवाड़ के शासनाधिकारी को खदेड़ कर उसने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। परन्तु गायकवाड़ की सेना आने पर भागना पड़ा। वाघेरों के उपद्रवों के शमनार्थ 1859 में कम्पनी सरकार ने गायकवाड़ की सहायतार्थ राजकोट, अहमदाबाद, बम्बई से नौ-सेना के साथ कर्नल डोनावन को ओखा भेजा। 4 अक्टूबर को

तोपों का घमासान युद्ध हुआ । फिर भी अंग्रेजों को ओखा का किला सर करने में सफलता नहीं मिली । अनेक सैनिकों के साथ कैप्टन मेक कोर्मेक और एडवर्ड विलियम जैसे सेनानी मारे गये । दोनों को एक ही कब्र में दफ़नाया गया । आज भी उनकी कब्र ओखा टापू में विद्यमान है ।

दूसरे दिन अंग्रेजों ने पूरे जोश से युद्ध किया, जिससे वाघेर लोग हारकर द्वारिका की ओर भागे । अंग्रेजों ने पीछा किया । 6 अक्टूबर, 1859 को विजयादशमी के दिन द्वारिका में तोप के गोले बरसाये गये । कई मन्दिर गिराये गये । रणछोड़जी के प्रसिद्ध मन्दिर के एक स्तम्भ को क्षति पहुँची । बहुत से वाघेर मारे गये और शेष जंगल में भाग गये ।

उस समय बम्बई के वैष्णव महाजनों ने प्रस्ताव पास कर दीपावली न मनाने का निर्णय किया और कम्पनी सरकार के सामने अपना विरोध प्रदर्शित किया । उसकी एक रिपोर्ट 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' के 27 अक्टूबर, 1859 के अंक में प्रकाशित हुई थी । उसके पश्चात् वाघेर सरदार जंगल में भटकते रहे । डकैती आदि उपद्रव मचाते रहे । उनका शमन करने का भी अंग्रेज प्रयत्न करते रहे । इस संघर्ष में अनेक अंग्रेज मारे भी गये । उनकी कब्रें आज भी विभिन्न स्थलों पर विद्यमान हैं ।

वाघेरों के सम्बन्ध का कोई प्रमाण नहीं मिलता । 1857 ई० में गायकवाड़ से युद्ध अवश्य हुआ था । 1859 ई० में गायकवाड़ की सहायतार्थ अंग्रेजों ने युद्ध किया था । ऋषि दयानन्द का इस घटना से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है । सत्यार्थप्रकाश का उक्त वर्णन 1859 ई० के ओखा के युद्ध से अधिक सुसंगत प्रतीत होता है ।

मेरे अब तक के शोध कार्य में ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी और 1857 ई० की राज्य क्रान्ति के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई है । भविष्य में कोई नया तथ्य प्राप्त हो तो सम्भवतः ऋषि के लेख की सार्थकता पुष्ट हो सके ।

एक और निर्देश कर दूँ : क्रान्ति के बाद नाना साहब मौरवी में रहे, यह संकेत पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने 'वेदवाणी' के जनवरी 1988 के अंक में इन्दुभाई पटेल (सायला निवासी) के लिखे अनुसार किया था। 'अपना जन्म चरित्र' पुस्तक में श्रीकृष्ण शर्मा के अनुसार यह लिखा है कि नाना साहब ऋषि दयानन्द का पत्र लेकर मौरवी आए थे। वे दोनों बातें अप्रामाणिक हैं। किंवदन्तियों के आधार पर ऐतिहासिक बातों का निर्णय करना उचित नहीं होगा।[1]

• • •

---

1. वाघेरों के इन संघर्षों को विस्तार से जानने के लिए निम्नलिखित ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। –
   1. मराठी पुस्तक 'शेंवटचा शूर वाघेर', लेखक : मुजुमदार सी० एन०, 1898
   2. गुजराती पुस्तक 'ओखामंडळ-ना वाधेर', लेखक : कल्याणराय नथुभाई जोषी, श्री सयाजी साहित्यमाळा, पुष्प 345, प्रकाशक : प्राच्यविद्या मन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वड़ोदरा
   3. 1905 में प्रकाशित सी० ए० किन्कैड (C.A. Kincaid) कृत 'दि आउटलोज् ऑफ़ काठियावार, एण्ड अधर स्टडिज' (The Outlaws of Kathiawar, and Other Studies) का चतुर्थ प्रकरण 'The Waghirs of Okhamandal'
   4. 2005 में प्रकाशित अच्युत याज्ञिक तथा सुचित्रा शेठ कृत 'द शेइपिंग ऑफ़ मॉडर्न गुजरात - प्लुरालिटि, हिंदुत्व एण्ड बियोन्ड' (The Shaping of Modern Gujarat - Plurality, Hindutva and Beyond) का चतुर्थ प्रकरण 'Welcoming the British Raj'

   ये ग्रन्थ इन्टरनेट पर – इण्डिया डिजिटल लाइब्रेरी की वेबसाइट (www.dil.org) आदि पर पढ़ें जा सकते हैं। – (सं०)

परिशिष्ट : 2

ऋषि-जीवनी में वर्णित -
स्वामी भवानन्द और माजी (बाजी) विडहनगरी

ऋषि दयानन्द ने अपनी आत्मकथा में लिखा है - "**असूज के आरम्भ (1913 वि०) में काशी पहुँचा । वहाँ जाके मैं उस गुफा में ठहरा जो वरणा और गंगा के संगम पर है । और जो उस समय भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी । वहाँ पर कई शास्त्रियों अर्थात् काकाराम, राजाराम आदि से मेरा परिचय हुआ, परन्तु वहाँ केवल 12 ही दिन रहा ।**"[1]

यह गुफा के अधिकारी (निवासी) भवानन्द सरस्वती कौन थे, इस विषय में कोई भी जानकारी ऋषि दयानन्द की किसी भी जीवनी में हमें प्राप्त होती नहीं है । हम इस प्रकरण में आगे चलकर उनका पूर्वाश्रम सहित जीवन परिचय प्रस्तुत करेंगे ।

माजी (बाजी) विडहनगरी कौन थी ?

ऋषि के जीवनचरित में यह माजी का उल्लेख मिलता है, जो काशी की वरुणा और गंगा संगम की गुफा में निवास करती थी । इनके सम्पूर्ण जीवन परिचय से पूर्व हम ऋषि जीवन-चरित में वर्णित स्वामी दयानन्द से उनकी भेंट का वर्णन करते हैं -

---

1. 'दयानन्द सरस्वती आत्मकथा', सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय, पृ० 17, वैदिक पुस्तकालय, परोपकारिणी सभा-अजमेर, प्रकाशन 1983 ई० - (ले०)

स्वामीजी काशी शास्त्रार्थ के बाद माघ 1926 वि० (जनवरी 1870) को कुम्भ मेले पर प्रयाग पहुँचे । पण्डित लेखराम रचित जीवनचरित में प्रयाग में माजी की स्वामीजी से हुई भेंट का वर्णन करते हुए लिखा गया है — "विदुषी मांजी (बाजी) बडनगरी (विडहनगरी) गुफा निवासिनी, वरणा संगम बनारस ने वर्णन किया कि - माघ वदी एकादशी को स्वामीजी का नाम हमने प्रयाग के मेले में सुना । उस समय हम विद्यार्थी थीं, और लघुकौमुदी पढ़ा करती थीं । ज्योतिष पढ़ चुकी थीं । दस-बीस विद्यार्थी साथ लेकर हम राजा (नाग) वासुकी पर गईं । वहाँ गंगा तट पर पत्थर के फर्श पर स्वामीजी को बैठे देखा । बहुत से संन्यासी और पण्डित वहाँ एकत्र होकर शास्त्रार्थ के लिए आते और हमारे सामने ही सामने दो-एक बात में उड़ते चले जाते थे । हम कुछ समय तक यह आनन्द देखती रहीं । भीड़भाड़ के कारण कुछ बातचीत स्वामीजी से न कर सकीं । दूसरे दिन फिर गईं । उस दिन स्वामीजी से बातचीत हुई । उनकी बातों से हमारे मन में विश्वास उत्पन्न हो गया । उस समय हमने उनसे यह भी पूछ लिया कि आपका यहाँ से किधर चलना होगा । स्वामीजी ने कहा कि मिर्जापुर चलेंगे । इसी से हम माघ सुदी पड़वा (प्रतिपदा) को वहाँ से चल पड़े । हमारे आने के कुछ दिन पश्चात् स्वामीजी मिर्जापुर आ गये ।"[1]

अन्य जीवनचरित में : पण्डित लक्ष्मण आर्योपदेशक ने 'बा जी बुढनगरी'[2] नाम से और देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने 'बाजी बढनगरी'[3] नाम से पण्डित लेखराम का उक्त वर्णन कुछ शब्दान्तर से प्रस्तुत किया है । डॉ० भारतीय रचित

---

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, पृष्ठ 196, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, संस्करण 2007 ई० - (सं०)
2. पण्डित लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित 'मुकम्मल जीवन चरित्र महर्षि दयानन्द सरस्वती' (उर्दू) का प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' कृत हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र', प्रथम भाग, पृष्ठ 288, प्रथम हिन्दी संस्करण, 2012 ई० - (ले०)
3. 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित', पृष्ठ 191, गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण 2050 वि० - (सं०)

'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' के प्रथम एवं दूसरे संस्करण में इस विदुषी महिला के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है ।[1]

अन्य भेंट : स्वामीजी से माजी की बनारस में हुई भेंट का वर्णन करते हुए पण्डित लेखराम ने लिखा है –

"संस्कृत की विदुषी श्रीमती माजी विडहनगरी ब्राह्मणी, निवासिनी वरणा संगम, आनन्द गुफा, बनारस ने वर्णन किया कि – जब स्वामीजी संवत् 1936 में यहाँ आये तो पौष के महीने में, कर्नल ऑल्काट साहब, मैडम ब्लैवेट्स्की, सेन्ट (सिनेट) साहब[2] और उनकी पत्नी और कलकत्ता पुलिस के बड़े साहब की पत्नी और दामोदर बम्बई वाले[3] – ये सब हमसे मिलने को हमारे घर (गुफा) पर आये और स्वामीजी भी साथ थे । योग की सिद्धि की चर्चा चली । (स्वामीजी ने) हमसे कहा कि हमारे देश में दो पैसे के लिये (योग की) सिद्धि दिखलाते हैं, हम इसको बहुत बुरा समझते हैं । ये काम मदारियों के हैं । हम योग में सिद्धि को[4] बुरा समझते हैं । ऐसी बातें ठीक नहीं हैं ।[5] फिर हम भी उनसे मिलने आनन्द बाग

---

1. डॉ० भवानीलाल भारतीय ने 1986 ई० में प्रकाशित अपने 'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' ग्रन्थ में माजी हरीकुंवरी (बडनगरी) का वर्णन 10वें प्रकरण में किया है । 1986 ई० में प्रकाशित 'वेदवाणी' के दयानन्द-विशेषांक (3) में भी डॉ० भारतीय का एतद्-विषयक लेख का समावेश किया गया है । – (सं०)
2. सिनेट प्रयाग के 'पायोनियर' पत्र के सम्पादक थे । – (ले०)
3. दामोदर महाराष्ट्रवासी थे और दुभाषिये का काम करते थे । – (ले०)
4. अर्थात् सिद्धि के प्रदर्शन को । – (सं०)
5. पण्डित लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित 'मुकम्मल जीवन चरित्र महर्षि दयानन्द सरस्वती' (उर्दू) के प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' कृत हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' के द्वितीय भाग में पृष्ठ 393 पर स्वामीजी के योग विषयक इस महत्त्वपूर्ण वक्तव्य को भूल से 'बाजी ने कहा' लिखकर उसे बाजी का वक्तव्य बताया गया है। पण्डित लेखराम कृत जीवन-चरित्र के पृष्ठ 188 पर भी इस कथन को स्वामीजी के द्वारा कहा गया बताया है । – (सं०)

में गई थीं । फाल्गुन के महीने में स्वामीजी के यहाँ व्याख्यान हुए थे । चूँकि होली के दिन थे इसलिये हम वहाँ न जा सकीं । पण्डित केशवदेव, बापूदेव (शास्त्री) के प्रसिद्ध शिष्य, जो चन्द्रदेव के नाम से विख्यात थे, नित्य जाया करते थे ।"[1]

कर्नल ऑल्काट की भेंट : कर्नल ऑल्काट ने स्व-लिखित 'ओल्ड डायरी लीव्ज' में माजी की भेंट का वर्णन निम्न शब्दों में किया है -

16 दिसम्बर, 1876 ई० को हम प्रसिद्ध महिला सन्त तथा वेदान्त में निष्णात माजी के दर्शनार्थ गये । गंगा के किनारे की एक गुफा में उनका निवास है । उन्हें यह आश्रम **उनके पिता से दाय भाग के रूप में प्राप्त हुआ था** । उनका एक मकान भी काशी नगर में था तथा एक संस्कृत का विशाल पुस्तकालय भी । नदी के किनारे से चालीस फुट धरातल पर बना यह आश्रम विशाल वृक्षों से घिरा हुआ है । यहाँ चबूतरे पर बैठकर इस गरिमामयी महिला से वार्तालाप करना अत्यन्त आकर्षक था । उस समय माजी की आयु लगभग 40 वर्ष लगती थी । उनका रंग साफ था तथा उनके व्यक्तित्व में भव्यता थी, जो मनुष्य को उनके प्रति सम्मान का भाव व्यक्त करने के लिए बाध्य करती थी । उनकी वाणी में कोमलता थी, मुख और शरीर कुछ झुका हुआ तथा नेत्रों में बुद्धिमत्ता तथा तेज झलकता था । उसने हमें कोई अलौकिक चमत्कार दिखाने से इन्कार कर दिया ।... एक सच्ची वेदान्तज्ञ महिला होने के कारण माजी अपने लिए 'मैं' या 'हम' का प्रयोग

---

1. पण्डित लेखराम संकलित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र', पृष्ठ 187-188 ।

पण्डित लक्ष्मण आर्योपदेशक के इस ग्रन्थ में इस भेंट का कुछ अधिक वर्णन भी है । पण्डित लक्ष्मण के इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद के प्रथम भाग के प्रकाशन के बाद मैंने प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' को माजी का जीवन-चरित्र भेजा था । अतः उन्होंने अपनी टिप्पणी में माजी के हरिकुंवरी नाम का निर्देश किया है। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने इस बनारस में हुई माजी की भेंट का वर्णन नहीं किया है । - (ले०)

न कर 'इस शरीर' शब्द का प्रयोग करती थी, किन्तु वे संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाएँ धाराप्रवाह बोलती थीं। वेदान्त के प्रति आस्था रखने वाली प्रसन्न-स्वभाव की स्त्री थी।"[1]

माजी के निधन के पर 'इण्डियन मिरर' में श्रद्धाञ्जलि लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें भी माजी का वर्णन मिलता है।[2]

माजी की जीवनी का शोध

उपर्युक्त विवरणों से माजी की योग्यता, व्यक्तित्व आदि की जानकारी मिलती है। परन्तु उनके जीवन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। एतदर्थ डॉ० भवानीलाल भारतीय का एक पत्र मुझे मिला, जिसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है –

"(मुझे) एक दिन अचानक दूरदर्शन पर एक गुजराती फिल्म देखने से उसमें उल्लिखित 'वड्‌नगर' नामक स्थान का पता चला। निश्चय हुआ कि वड्‌नगर गुजरात का ही कोई ग्राम या कस्बा है। इसे ही महाराज के उर्दू जीवन-चरित में 'विहडनगर' लिखा गया है। अब वड्‌नगर का पता लगाने के लिए मैंने अपने मित्र प्रो० दयालजी भाई आर्य जामनगर वालों को पत्र लिखा तो उन्होंने अपने जून 1985 के पत्र में मुझे सूचित किया कि माजी बडनगरी के सम्बन्ध में तीन प्रकार की सम्भावनाएँ की जा सकती हैं : (1) वड्‌नगर कस्बे की निवासिनी होने के कारण उक्त महिला माजी वड्‌नगरी कहलाती थीं। यदि यह

---

1. 'वेदवाणी' के दयानन्द-विशेषांक (3) में प्रकाशित डॉ० भवानीलाल भारतीय के लेख से संक्षिप्त संकलन। - (ले०)

2. वही - (ले०)
'इण्डियन मिरर' के इस लेख एवं थियोसोफिकल सोसायटी की वेबसाइट पर उपलब्ध माजी विषयक विवरण को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि माजी इस सोसायटी से भी कुछ प्रभावित रही होंगी। - (सं०)

माना जाय तो यह वड़नगर वर्तमान गुजरात के महेसाणा जिले का कस्बा है।[1] (2) किन्तु एक सम्भावना यह भी हो सकती है — गुजरात में 'नागर' नामक ब्राह्मणों का एक प्रसिद्ध वर्ग है । इस नागर जाति में अनेक उपजातियां हैं, जिनमें एक 'वड़नगरा' भी है । यह भी सम्भव है कि उक्त माजी नागर ब्राह्मणों के वड़नगरा गोत्र में उत्पन्न हों और इसलिए वह 'वड़नगरी' (स्त्रीलिंग प्रयोग) कहलाती हो । ध्यातव्य है कि गुजराती में प्राय: 'ब' के लिए 'व' का प्रयोग होता है । इसे पण्डित लेखराम ने 'बिहडनगरी' लिखा है । (3) तीसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि उक्त माजी वड़नगर की निवासिनी होने के साथ-साथ नागर जाति की वड़नगरा गोत्र की भी रही हो ।"

उसके बाद मैंने माजी के जीवन के विषय में शोध जारी रखा । मुझे '**भारत-नां स्त्रीरत्नो**' नामक एक पुराना गुजराती ग्रन्थ प्राप्त हुआ । इसके तीन भाग हैं । इस ग्रन्थ में माजी (जिनका वास्तविक नाम हरिकुंवरी था) और उनके पिता रामेश्वर दवे (जिनका उल्लेख ऋषि की आत्मकथा में 'भवानन्द सरस्वती' नाम से हुआ है) - दोनों के जीवन के बारे में हमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई । इससे यह ज्ञात हुआ कि उपर्युक्त सम्भावनाओं के अनुसार माजी नागर ब्राह्मणों के वड़नगरा गोत्र की होने से ही वह 'वड़नगरी' कहलाती थी ।

मैंने उक्त ग्रन्थ के आवश्यक पृष्ठों की फोटोप्रति कराकर डॉ० भारतीय को भेजी । उन्होंने इस सामग्री का हिन्दी में अनुवाद कर उसे 'वेदवाणी' मासिक के जनवरी 1986 के अंक में प्रकाशित किया । इसके बाद मुझे 'गुजरात समाचार' दैनिक के 15 सितम्बर, 1996 के अंक में प्रकाशित माजी के जीवन-कार्य का उनके एक चित्र सहित वर्णन करता हुआ एक लेख पढ़ने को मिला । यह लेख दोलत भट्ट द्वारा लिखा गया है । बाद में गुजरात सरकार के माहिती विभाग द्वारा 2000 ई० में प्रकाशित यही लेखक के 'धरती-नो

---

1. देश के वर्त्तमान प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी का जन्मस्थान - (सं०)

धबकार' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 123 से 127 में भी उनके उक्त लेख की सामग्री स्वल्प अतिरिक्त जानकारी सहित निबद्ध की हुई है। तदनुसार डॉ० भारतीय के उसी अनुवाद को कुछ आवश्यक संशोधन, परिवर्धन तथा टिप्पणियों सहित यहाँ प्रस्तुत किया जाता है –

जन्म : माता हरिकुंवरी का जन्म काशी निवासी वडनगरा ब्राह्मण श्री रामेश्वर दवे के यहाँ 1883 वि० (1826 ई०) मागशीर्ष कृष्णा 6, गुरुवार को हुआ था। काशी में उनका गृह था, परन्तु उनके मातामह (नाना) तथा मामा का उनके ऊपर अधिक प्रेम होने से रामेश्वर अपनी स्त्री के साथ भरतपुर में अधिक रहते थे। अतः हरिकुंवरी का जन्म उनके मामा के घर भरतपुर में हुआ था।

पिता : रामेश्वर दवे अत्यन्त सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। संसार की खटपट में ये अधिक पड़ते नहीं थे। ये अत्यन्त भक्त, उदार तथा शान्त प्रकृति के थे। योग तथा मन्त्र शास्त्र पर इनकी दृढ भक्ति थी तथा इसी में इनका सारा समय व्यतीत होता था। गरीबों को मुफ्त दवाइयाँ देने का तथा छात्रों को निःशुल्क विद्या दान करने का उनका स्वभाव बन गया था। इसीलिए इनके घर सारे दिन छात्रों की पाठशाला ही बैठी दिखाई देती थी।

मातृ-वियोग : माजी हरिकुंवरी के पिता सपरिवार कलकत्ता गये थे। वहाँ दैवयोग से उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई, जिससे केवल साढ़े चार वर्ष की बालिका हरिकुंवरी के पालन-पोषण तथा शिक्षा का सारा भार रामेश्वर दवे के ऊपर आ पड़ा। पुरुष चाहे जितना कुशल हो परन्तु दिनभर अपने उदर-पोषण के लिए नौकरी या व्यवसाय से लौटकर घर आकर अपने बालक की देखभाल करना उसके लिए भी अति कठिन हो जाता है। अतः रामेश्वर ने अपनी पुत्री को एक समझदार दासी (धात्री) के हाथ सौंप दिया।

हरिकुंवरी बाल्यकाल से ही अत्यन्त बुद्धिमती एवं चतुर थी। जो शब्द एक बार सुन लेती अथवा जो काम एक बार देख लेती उसे कभी भूलती

नहीं थी। पिता के पास अनेक साधु-सन्त, महात्मा आदि आते रहते थे और अनेक विषयों पर चर्चा एवं वाद-विवाद करते थे । बालिका हरिकुंवरी अत्यन्त रुचि के साथ उन बातों को सुनती रहती थी और मर्म की बातें को अपने हृदय में प्रविष्ट कर लिया करती थी । इस सत्संग का उनके जीवन पर बहुत अच्छा असर पड़ा । गीता आदि धर्मशास्त्रों के उपदेश-वाक्य बिना पढ़े ही उनके हृदय में प्रविष्ट हो गये और उनका ध्यान भगवद्-भक्ति की ओर लग गया ।

बाई हरिकुंवरी की दासी (धात्री) गृहकार्य में अति कुशल थी। उसने इन्हें घर के काम, पति-सेवा तथा रसोई आदि के कार्य में निपुण कर दिया, परन्तु इस दासी को पढ़ना-लिखना पसन्द नहीं था । वह स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध थी। अतः वह हरिकुंवरी को विद्याभ्यास करने से सदा रोकती रहती थी। परन्तु हरिकुंवरी को स्वाभाविक रूप में पठन-पाठन में रुचि थी, इसलिए उसने गुप्त रीति से ही पढ़ने-लिखने का पूर्ण अभ्यास कर लिया । पिताजी के छात्रों के साथ रहने से इन्हें बँगला भाषा बोलने का अभ्यास हो गया तथा उनके साथ वह बँगला में ही वार्तालाप करतीं। गीता और उपनिषदों को ध्यानपूर्वक बार-बार सुनने से ये ऐसी विदुषी बन गई कि साधारण बुद्धि का मनुष्य तो अनेक वर्षों के अभ्यास के बाद भी इतना पारंगत नहीं हो सकता ।

विवाह और पति-वियोग : दस वर्ष की आयु में पिता ने हरिकुंवरी का विवाह बनारस के एक कुलीन नागर ब्राह्मण के पुत्र के साथ कर दिया। अतः कुछ वर्ष के बाद हरिकुंवरी को बनारस जाना पड़ा। वहाँ जाकर उन्होंने अपने सद्गुण तथा सरल, निष्कपट स्वभाव से ससुराल पक्ष के सभी सदस्यों को अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। उनमें भी इनकी ननद तो इनसे इतनी प्रसन्न हो गई थी कि वह प्रत्येक दिन सवेरे अपनी भाभी का मुंह देखे बिना अपनी शय्या से ही नहीं उठती थी। अभाग्यवश हरिकुंवरी के पति को ज्वर आने लगा और केवल पन्द्रह वर्ष की आयु में केवल एक ही वर्ष का दाम्पत्य-सुख भोगकर

वह वैधव्य के दुःखसागर में डूब गई । कुछ दिनों के बाद इनके श्वशुर का भी देहान्त हो गया और बाई हरिकुंवरी को निराधार होकर रहना पड़ा ।

घर के अन्य सभी सदस्य तथा अड़ोसी-पड़ोसी सभी हरिकुंवरी के स्वभाव से अत्यन्त प्रसन्न थे, परन्तु उनकी सास का स्वभाव अधिक कठोर था । वह अपनी दुःखियारी बहू से कभी प्रसन्न नहीं रहती थी । उसने हरिकुंवरी के ऊपर इतना अधिक अन्याय किया कि अपनी सारी सम्पत्ति तथा सामान की स्वामिनी अपनी पुत्री को बना दिया और निराधार विधवा पुत्रवधु को मुँह ताकती रख दिया । परन्तु साधु स्वभाव की हरिकुंवरी ने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की । पहले से ही उनकी रुचि भगवद्-भक्ति में थी और अब तो पतिदेव के अकाल देहान्त के कारण वे इस संसार को नश्वर तथा दुःख के सागर के रूप में मानने लगी थीं । अतः उन्होंने अपने मन को रात-दिन जगदीश्वर की सेवा में लगा दिया ।

पति-वियोग का शोक : 1900 वि० में उनके पिता बनारस गये और पुत्री को साथ में लेकर तीर्थयात्रा के लिए निकले । प्रयाग, अयोध्या, पुष्कर, वृन्दावन और मथुरा आदि तीर्थस्थानों में यात्रा कर पिता और पुत्री हरिद्वार के कुम्भ के मेले में पहुँचे । हरिकुंवरी को अपने पति के प्रति अत्यन्त प्रेम था । किन्तु निर्दय काल के आगे उनका कुछ भी वश नहीं चला । वह इस वियोग के दुःख को भूलने का अत्यन्त प्रयत्न करती रही, क्योंकि वियोगी मनुष्य भगवद्-भक्ति में स्वयं को लीन करने में विफल रहता है । परन्तु इस पति-वियोग रूपी ताजे घाव पर कोई भी औषधि काम नहीं करती थी । समय-समय पर इन्हें पति का स्मरण होता था और वे कई घण्टों तक पड़े-पड़े रोती रहती थीं ।

यात्रा के लिए जाते समय हरिकुंवरी ने सुना था कि मथुरा में एक ऐसा साधु रहता है जो कि रुपये लेकर मनुष्य को उसके मृत सम्बन्धियों के साथ मिला देता है ! हरिकुंवरी को यह आशा थी कि मथुरा जाने पर उस साधु के

द्वारा अपने पतिदेव के पुनः दर्शन कर सकेंगी, परन्तु उनके पिता को पुत्री के इस विचार का ज्ञान हो गया। अतः उन्होंने हरिकुंवरी को शिक्षा के रूप में कहा कि - "बेटी, इस संसार में कोई किसी का नहीं है। कोई किसी की स्त्री नहीं, और कोई किसी का पति नहीं। सभी ईश्वर की माया से ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट कार्य को करने के लिए संसार में किसी-न-किसी सम्बन्ध से एकत्रित होते हैं। जिस देह को हमने अपनी आँखों के आगे जला दिया उसमें पुनः जीवित रहने की शक्ति कहाँ से हो सकती है ? कोई इसका दर्शन कराने की शक्ति नहीं रखता। अब तो ईश्वर को ही अपना सर्वस्व मानकर उनकी सेवा में लीन हो जाना चाहिए।"

शोक-निवारण : अपने मन का भ्रम पिता के समक्ष प्रकट हो जाने से हरिकुंवरी को अत्यन्त लज्जा आई और इसी समय से पिता के उपदेशों ने इनके ऊपर ऐसा असर किया कि सभी तरंगे जाती रहीं तथा जप, तप, ध्यान, पूजा तथा आत्म-विचार और शास्त्रों के अभ्यास में ही इन्होंने अपने चित्त को लगाया। अब गीता के प्रति इनकी रुचि इतनी अधिक बढ़ गई कि जब भी अवकाश मिलता तभी गीता का मनन करतीं। गीता का **'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'** (गीता : 18.65) यह वाक्य तो सदा इनके मुख से निकलता रहता था। इसलिए इनके पिता ने इनका नाम 'मन्मन' रखा था तथा ये इस नाम से अधिक प्रसिद्ध हुई। हरिद्वार के कुम्भ के मेले में सम्मिलित होकर दोनों वहाँ से चले और मार्ग में अन्य तीर्थों की यात्रा कर 1903 वि० में काशी पहुँचे। हरिकुंवरी के पिता रामेश्वर दवे के गुरु श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती अत्यन्त विद्वान् थे। ये काशी से पूर्व की ओर गंगा के किनारे पर एक गुफा में रहते थे। परन्तु इनके देहत्याग के बाद यह सुन्दर गुफा खाली पड़ी थी। पिता और पुत्री इसी गुफा में रह कर परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करने में लीन हो गये।

ईश्वर-समर्पण : जब हरिकुंवरी के पिता के देहान्त का समय निकट

आया तो लोगों ने उनसे पूछा कि बाई के भरण-पोषण का क्या प्रबन्ध किया है ? तब बाई ने अपने पिता की ओर से उत्तर दिया कि - ''संसार में सभी लोग अपने-अपने स्वार्थ के संगी हैं । कोई किसी का नहीं है । जिस पति का हाथ माता-पिता हजारों लोगों के सामने पकड़ाते हैं, जब वही पति अपनी स्त्री को छोड़कर चला जाता है तो अन्यों की तो बात ही क्या ? मेरा पालन-पोषण करने वाला एकमात्र परमेश्वर है जो कि अखिल विश्व का पालनकर्ता है । मुझे उसी का भरोसा है और यही सर्वशक्तिमान् जगदाधार मेरा पालन करेंगे ।''

पिता की मृत्यु : बाई हरिकुंवरी का ऐसा बोधप्रद उत्तर सुनकर सभी लोगों को आश्चर्य हुआ । 1860 ई० (1917 वि०) में बाई के पिता, जो इस समय **श्री परमहंस परिव्राजक स्वामी ब्रह्मानन्द** के नाम से प्रसिद्ध थे, वे 78 वर्ष की आयु में परलोकगामी हुए। उस समय उनकी इकलौती कन्या बाई हरिकुंवरी की आयु 34 वर्ष की थी ।

स्वामी दयानन्द से भेंट : उस समय भारतोद्धारक महात्मा स्वामी श्री दयानन्द जी सरस्वती प्रवास करते-करते काशी पहुँचे और बाई की प्रशंसा सुनकर उनसे भेंट हेतु गये । उनके साथ वार्तालाप कर स्वामीजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें 'गार्गी' के नाम से विभूषित कर उन्होंने अपने भाव प्रकट किए । एक बार उदयपुर में स्वामीजी को सामवेद-भाष्य की आवश्यकता हुई, परन्तु यह ग्रन्थ वहाँ कहीं से भी उपलब्ध नहीं हुआ । तब स्वामीजी ने महाराणा सज्जनसिंह के समक्ष बाई (माजी) की अत्यन्त प्रशंसा की और कहा कि यह ग्रन्थ सम्भवत: माजी के पास मिल सकता है ।[1] स्वामीजी जैसे महात्मा के मुख से माजी की प्रशंसा सुनकर महाराणा अत्यन्त प्रसन्न हुए । उनके दर्शन करने के लिए इतने अधिक उत्सुक हुए कि अपने राज्य से पण्डित मोहनलाल

1. डॉ० भवानीलाल भारतीय लिखित 'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी', पृष्ठ 47, 2014 ई० । - (सं०)

को बनारस भेजकर उनसे उदयपुर पधारने की प्रार्थना की । महाराणा साहब का निमन्त्रण स्वीकार कर बाई उदयपुर गईं और वहाँ कई दिन रहकर वे 1939 वि० में पुनः काशी लौटीं ।[1]

कर्नल ऑल्काट से भेंट : इस अवधि में माजी हरिकुंवरी के गुणों का प्रकाश दूर तक फैल गया था । इस देश के अनेक प्रान्तों के लोग उनके दर्शनों के लिए काशी आते । इतना ही नहीं, किन्तु सात समुद्र पार रहने वाले परदेशी विद्वानों में भी बाई को अच्छी ख्याति प्राप्त हुई । थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रवर्त्तक मैडम ब्लैवेट्स्की, कर्नल ऑल्काट, श्रीमती बेसेन्ट, कुमारी मूलर आदि अनेक यूरोपीय व्यक्ति जब काशी जाते तो आनन्द गुफा में जाकर माताजी के दर्शन किये बिना नहीं रहते थे ।

व्यक्तित्व : माजी देखने में सुन्दर तथा आकर्षक थीं । उसी प्रकार गुणों में भी वे अद्वितीय थीं । उनका शरीर स्थूल था तथा कद ठिगना था । परन्तु वह अत्यन्त सुन्दर तथा सद्गुणों की मूर्तिरूप थीं । एक बार इनका दर्शन कर लेने पर उनका बार-बार सत्संग करने की इच्छा होती थी ।

बंगाली जन : 1944 वि० में कलकत्ता के प्रसिद्ध बाबू कालीकृष्ण ठाकुर जब काशी यात्रा पर गये तब बाई की प्रशंसा उन्होंने इतनी अधिक सुनी कि वे बाई के आश्रम पर जाने की इच्छा को रोक नहीं सके । उन्होंने देखा कि आनन्द गुफा अब बिलकुल जीर्ण हो गई है और कुछ ही समय में इसके गिर जाने की सम्भावना है । उन्होंने एक अंग्रेज इंजीनियर की सलाह से एक हजार रुपये व्यय कर वहाँ एक सुन्दर और मजबूत मकान निर्मित कर दिया और

---

1. यहाँ 1939 वि० गुजराती काल गणना के अनुसार प्रतीत होता है । उदयपुर में स्वामीजी और माजी की भेंट का वर्णन हमें स्वामीजी के किसी भी जीवन-चरित्र में पढ़ने को नहीं मिला । अतः यही प्रतीत होता है कि माजी का उदयपुर-प्रवास स्वामीजी के उदयपुर से प्रस्थान कर आगे शाहपुरा तथा जोधपुर आदि की ओर चले जाने के बाद का ही होना चाहिए । - (सं०)

एक हजार रुपये नकद भेंट किये। उस दिन से बंगाली लोग माजी को साक्षात् माता-रूप मानकर उनकी अत्यधिक भक्ति करने लगे।[1]

बाई की सेवा करने के लिए इस समय 6-7 मनुष्य अपनी इच्छा से रहते थे, परन्तु इनके भरण-पोषण की चिन्ता बाई को नहीं करनी पड़ती थी। सेवकगण ही इनका सारा खर्च अपनी प्रसन्नता से वहन करते थे।

विदुषी और सेवा : बाई ने रामगीता, शिवगीता, अवधूतगीता, गुरुगीता, गीतागोविन्द, रामपञ्चाध्यायी, रासपञ्चाध्यायी, सप्तशती, योगवाशिष्ठ तथा उपनिषदों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। रामायण का भी इन्हें अच्छा अभ्यास था तथा ज्योतिष एवं वैद्यक में भी अत्यधिक रुचि थी। ये स्वयं अत्यन्त मूल्यवान् औषधियाँ बनाकर अपने पास रखतीं और गरीब रोगियों को मुफ्त बाँटतीं। इन्होंने शिवगीता पर एक अत्यन्त सरल तथा उत्तम टीका लिखी है, जिसे पढ़ने से उनके विचार तथा उनकी योग्यता आदि का पूर्ण ज्ञान होता है।[2] तीर्थयात्रा में बाई की बहुत अधिक रुचि थी। इसलिए भारत में जितने मुख्य तीर्थ हैं, उन सब की उन्होंने यात्रा की थी। आजकल की भाँति उस समय चारों ओर रेलों का जाल बिछा हुआ नहीं था। अतः ये यात्राएँ अत्यन्त कष्ट झेल कर प्रायः पैदल ही करनी पड़ी थीं।[3]

1898 ई० के नवम्बर मास में 72 वर्ष की आयु में माजी हरिकुंवरी का देहान्त हुआ। उनकी मृत्यु से भारतवर्ष में से एक अमूल्य स्त्री-रत्न चला गया।

---

1. व्यक्तिपूजा के यही भाव आगे चलकर गुरुडम एवं मूर्त्तिपूजा को प्रश्रय देते हैं। - (सं०)
2. पता नहीं कि यह ग्रन्थ वर्त्तमान में प्राप्य है वा नहीं। इतना तो है कि उसे देखने से माजी के विचारों का परिचय अवश्य मिलता। - (सं०)
3. इससे प्रतीत होता है कि माजी इन तथाकथित तीर्थों में दृढ़ विश्वास करती होंगी। - (सं०)

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरणों से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं —

1. गुजराती माजी का नाम हरिकुंवरी था। ब्राह्मणों में नागर जाति की उपजाति वड़नगरा गोत्र की होने से वह माजी वड़नगरी कहलाती थी।
2. माजी का निवास बनारस में वरुणा-गंगा संगम पर आनन्द गुफा में था।
3. स्वामी दयानन्द से प्रयाग और बनारस में माजी की भेंट हुई थी।
4. माजी के पिता का नाम रामेश्वर दवे था और संन्यास लेने के बाद वे ब्रह्मानन्द (अथवा भवानन्द) के नाम से प्रसिद्ध थे।

स्वामी दयानन्द का आनन्द गुफा में निवास

स्वामीजी की आत्मकथा के अनुसार वे 1913 वि० में काशी के वरुणा-गंगा संगम पर स्थित इस गुफा में 12 दिन रहे थे। उन्होंने यह भी लिखा है कि उस समय यह गुफा भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी की आत्मकथा में वर्णित यही 'भवानन्द सरस्वती' और गुजराती जीवनी में वर्णित 'ब्रह्मानन्द' एक ही व्यक्ति है; क्योंकि स्थान, समय आदि समान हैं।

स्वामीजी की 'थियोसोफिस्ट' में प्रकाशित आत्मकथा की तीन किस्तों में से दो किस्तों की पाण्डुलिपि स्वामीजी के हस्ताक्षर में लिखी हुई प्राप्त हुई हैं। गुफा-निवास का वर्णन तीसरी किस्त में है, जो पण्डित भगवद्दत्त के संस्करण पर आधारित होने से उपर्युक्त 'ब्रह्मानन्द' के स्थान पर 'भवानन्द' लिखा गया सम्भव है।

शंका : यहाँ किसी के मन में यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि जब माजी और उनके पिताजी इस गुफा में रहते थे, तब स्वामीजी प्रायः समवयस्क युवा महिला (स्वामीजी का जन्म 1881 वि० में और माजी का जन्म 1883 वि०

में हुआ था) के साथ उसी गुफा में कैसे रह सकते थे ?

समाधान : जैसा कि पूर्व पृष्ठों में वर्णित किया गया है कि 1914 वि० (1857 ई०) के स्वातंत्र्य संग्राम के कारण माजी और उनके पिता 1912 वि० में रहने के लिए यह गुफा को छोड़कर रामघाट चले गये थे। क्रान्ति के शमन के बाद 1917 वि० के वर्ष में पिता की मृत्यु के बाद माजी ने इस गुफा में पुनः निवास किया था। स्वामीजी की आत्मकथानुसार वे इस गुफा में 1913 वि० के असूज (आश्विन) महिने के आरम्भ में रहे थे। स्वामीजी ने आत्मकथा में इस गुफा के बारे में स्पष्ट विधान किया है कि – "**और जो उस समय भवानन्द (ब्रह्मानन्द) सरस्वती के अधिकार में थी**" । इन दोनों प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि स्वामीजी के इस गुफा-निवास के काल में माजी एवं उनके पिता इस गुफा में नहीं रहते थे ।

माजी और पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा

माजी हरिकुंवरी की यात्रा का वर्णन मिलता है । वह नारायण सरोवर की यात्रा के समय माण्डवी (कच्छ) भी गई थी । उस समय श्यामजी विद्यार्थी थे । स्कूल में उन्हें माजी के समक्ष संस्कृत श्लोकों का पाठ किया । अतः माजी ने प्रसन्न होकर कहा था कि इनको (श्यामजी को) स्वामी दयानन्द जी के पास मुम्बई संस्कृत पढ़ने के लिए भेज दो, यह विद्वान् बनेगा ।

श्यामजी विषयक उक्त विवरण मुझे लोगों से सुनने से मिला है। श्यामजी की जीवनी तथा अन्य स्रोतों से प्रयास करने पर भी इस बात का कोई लिखित प्रमाण आज पर्यन्त मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। आगे किसी को प्रमाण मिले तो इसकी जानकारी हमें देने की कृपा करें । अस्तु ।[1]

• • •

---

1. द्रष्टव्य (माजी विषयक अधिक जानकारी के लिए) : जॉन कैम्पबेल ओमन (John Campbell Oman) रचित 'द मिस्टिकल असेटिक्स एण्ड सेंट्स ऑफ़ इण्डिया' (The Mystics, Ascetics and Saints of India), 10वाँ प्रकरण । – (सं०)

परिशिष्ट : 3

पोपटलाल कल्याणजी रावल

ऋषि दयानन्द के प्रारम्भिक जीवन एवं वंश-परिचय की पूर्ण जानकारी देवेन्द्रनाथ को पोपटलाल रावल से प्राप्त हुई । इस तथ्य को अधिक प्रमाणित करने के लिए टंकारा में सन् 1926 में 7 से 11 फरवरी तक श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया गया। उसमें पोपटलाल ने देवेन्द्र बाबू लिखित जीवनचरित्रोक्त तथ्यों को लिखित रूप में सबके सामने प्रस्तुत किया, जो विजयशंकर मूलशंकर की 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' नामक पुस्तक में तीन पृष्ठों में विद्यमान है। उसी पुस्तक में महोत्सव का विवरण, ऋषि का मूल नाम, जन्म गाँव, जन्म गृह, शिवरात्रि का शिव मन्दिर, मूलशंकर का बालसखा इब्राहीम (गुजराती में 'अभराम') आदि का परिचय एवं चित्र प्रकाशित किए गए हैं। उसी में पोपटलाल का चित्र भी छपा है, जिसे यहाँ दिया गया है ।

वंश परिचय : करसनजी त्रवाड़ी (त्रिवेदी) की पाँच सन्तान थी । इनमें से तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं । सबसे बड़े पुत्र मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) ने गृहत्याग किया। उसके गृहत्याग के पश्चात् करसनजी के दो अन्य पुत्र थे उनका भी कालान्तर में देहान्त हो गया । करसनजी की एक पुत्री तो जब मूलशंकर के गृहत्याग करने से पूर्व ही हैजा से चल बसी थी। अतः करसनजी के परिवार में केवल एक ही पुत्री रही, जिसका नाम प्रेमबाई था। करसनजी ने उनका विवाह गोंडल नगर के समीपवर्ती गुन्दाला (गुन्दाळा) गाँव के निवासी मंगलजी लीलाधर रावल के साथ किया और मंगलजी को भी टंकारा ले आए । उसके पुत्र बोघा रावल और बोघा के पुत्र कल्याणजी हुए ।

कल्याणजी के दो पुत्र थे – (1) पोपटलाल (जिसका अपर नाम प्रभाशंकर था) और (2) प्राणशंकर रावल। अतः पोपटलाल रावल मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) की बहिन प्रेमबाई के प्रपौत्र थे।

पोपटलाल का जन्म ऋषि दयानन्द के निर्वाण सन् 1883 के चार वर्ष पश्चात् सन् 1887 में हुआ था। तिथि मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी थी। सौराष्ट्र में उस काल में शिक्षा का प्रसार कम होते हुए भी आपने विशेष शिक्षा प्राप्त की थी और एक शिक्षक के रूप में तत्कालीन दो रुपये प्रतिमाह वेतन से जीवनयापन आरम्भ किया।

गृहस्थ और परिवार : आपका विवाह तत्कालीन सामाजिक रिवाज के अनुसार प्राण कुंवरबेन से हुआ था। उनसे एक पुत्री छ्वलबेन हुई। अपनी युवावस्था में ही पत्नी का देहान्त हो गया। अतः आप में कुछ विरक्त भाव उत्पन्न हो गया। पुत्री छ्वलबेन का विवाह रचाकर आप टंकारा छोड़ कर कुछ समय के लिए भारत के दक्षिण प्रान्तों में चले गए। वहाँ भूमि से जल निकालने के बोरिंग के व्यवसाय में व्यस्त रहे, जिससे पर्याप्त धनोपार्जन कर वे पुनः टंकारा वापस लौटे।

आप अपने उदार स्वभाव के कारण धन अधिक व्यय करते रहे। यह देखकर निकट के सम्बन्धियों ने बड़ी आयु में आपका दूसरा विवाह करवाया। उस पत्नी का नाम जीजाबाई था। दोनों की आयु में पर्याप्त अन्तर था। इस गृहस्थ से आपको छः पुत्र हुए, जिनके नाम थे – भानुशंकर, मुकुन्दराय, जयन्तीलाल, हसमुख, प्रवीण और अरविन्द।

स्वामी व्रतानन्द वर्षों पूर्व टंकारा आए थे। तब इन पुत्रों में से भानुशंकर और जयन्तीलाल को अपने चित्तौड़ गुरुकुल में पढ़ाने के लिए ले गए थे। परन्तु वे दोनों वहाँ अधिक समय नहीं रहे और टंकारा वापस लौट आए।

संस्मरण : आपके तृतीय पुत्र जयन्तीलाल मेरे समवयस्क होने से हम एक ही श्रेणी में पढ़ते थे और मित्रता के कारण आपके घर आने-जाने का मुझे

बार-बार सौभाग्य प्राप्त होता था । साथ में आपका और माताजी जीजाबाई का वात्सल्य भी मुझे मिलता रहता था ।

आयु-वृद्धि के साथ आपकी आँखों में दृष्टिमान्द्य (दृष्टि-मन्दता) की समस्या हुई थी । अतः प्रतिदिन अपने छोटे पुत्र की सहायता से आप टंकारा बाजार में निकलते थे । उस समय मैं अपनी दर्जी (Tailoring) की दुकान पर कार्य करता था । उसी दुकान पर मेरे पिताजी के साथ आप प्रतिदिन कुछ समय बैठा करते थे और अपनी यात्रा के समय आर्यजगत् के विद्वानों तथा नेताओं के साथ के अपने संस्मरण सुनाते रहते थे; जिसमें लाहौर में पण्डित भगवद्दत्त के संस्मरण भी सुनाते थे ।

टंकारा आर्यसमाज का तत्कालीन साप्ताहिक सत्संग पारिवारिक रूप में सदस्यों के घरों में हुआ करता था । उसी क्रम में आपके घर पर भी सत्संग होता था । अन्य घरों में आयोजित सत्संगों में भी आप अवश्य सम्मिलित होते थे । जिसमें आपका प्यारा भजन - 'यह वैदिक धर्म हमारा है' आप मधुर स्वर में गाया करते थे ।

युवा काल में कुछ समय तक आपकी रुचि नाटक (नौटंकी) में काम करने की भी रही थी । अतः आपका वक्तव्य प्रभावशाली होता था । आप दयानन्द प्रशस्ति को जब जोशीले स्वर में सुनाते थे तब श्रोताओं के रोंगटें खड़े हो जाते थे । वे पंक्तियाँ आज भी मेरी स्मृति पर अंकित हैं । सम्भवतः वे पंक्तियाँ पुराने कवि तेजसिंह की हो सकती हैं, जो निम्नलिखित हैं -

सोचो और विचारो, यह कौन-सा बल था स्वामी में,
जिससे कि मुकाबला किया दुनिया सारी का ।
जितने ही मतमतान्तर उनको अच्छी तरह रगड़ डाला,
और कई बार मान उतारा काशी बिचारी का ।
दूर-दूर देशों में बड़े-बड़े दुर्ग जीते,
न कोई साथ बल था सेना-शस्त्रधारी का ।

यह बल ब्रह्मचर्य का, जिससे थी सबने हार मानी,
किया न मुकाबला इस बाल ब्रह्मचारी का ।

आपका देहान्त 2 जनवरी, 1950 को हुआ । आपके देहान्त के पश्चात् परिवार वांकानेर नगर में स्थानान्तरित हुआ। वर्तमान में वहीं स्थायी है। जीजाबाई का दो मास पूर्व ही (अर्थात् 1998 ई० के अन्त में) दीर्घायु में देहान्त हुआ।

अन्य संस्मरण : पोपटलाल के परिचय की समाप्ति के साथ प्रसंगोचित एक और निर्देश भी आवश्यक है कि पोपटलाल के छोटे भाई प्राणशंकर थे। इन दोनों भाइयों की सम्पत्ति के बटवारे के समय करसनजी का घर (मूलशंकर का जन्मगृह) प्राणशंकर को मिला। उन्होंने लोभवश यह जन्मगृह स्थानीय आर्यसमाज को नहीं दिया और एक गृहस्थ को बेच दिया।[1] प्राणशंकर के तृतीय पुत्र प्रभुलाल भी मेरे समवयस्क थे और साथ पढ़ते थे। वह इन्दौर में रहते हैं।

(‘टंकारा समाचार’, फरवरी 1999 का ‘ऋषि-बोधांक’, पृष्ठ 47-49 से साभार)

• • •

---

1. दयाल मुनि से हुई बात से यह ज्ञात होता है कि प्राणशंकर ने ऋषि का जन्मगृह एक गृहस्थ को बेच दिया था। उन्होंने (प्राणशंकर ने) ऋषि के जन्मगृह के पास वाला एक अन्य भवन किसी सुनार से खरीदा था। कालान्तर में महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट ने उन भवनों के हिस्से किसी प्रभुदयाल नामक व्यक्ति से खरीद कर एवं कानजी चकु भम्मर (चकु सुन्दरजी भम्मर) आदि से प्राप्त कर उन्हीं स्थान पर ऋषि का जन्मस्थान निर्माण किया है, जिसमें ऋषि के जन्मगृह का स्वल्प भाग भी समाविष्ट है। – (सं०)

परिशिष्ट : 4

टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव में पोपटलाल तथा इब्राहीम के निर्णायक वक्तव्य

1926 ई० में टंकारा में आयोजित टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव में ऋषि दयानन्द की बहिन प्रेमबाई के प्रपौत्र पोपटलाल का निर्णायक वक्तव्य –

पञ्चम दिवस : 11 फरवरी, 1926 - बृहस्पतिवार

स्थान : बड़ा पण्डाल

मध्याह्न का कार्य समाप्त हो जाने के बाद सभा मण्डप में एक रोचक तथा चित्ताकर्षक दृश्य उपस्थित हुआ। पूर्व सूचना के अनुसार यह समय ऋषि के निकट सम्बन्धियों तथा प्रत्यक्षदर्शियों के परिचय के लिए रक्खा गया था। ऐसे भाग्यशाली व्यक्तियों के दर्शनों के लिए जनता बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। सम्पूर्ण पण्डाल खचाखच भरा हुआ था। सब से प्रथम टंकारा निवासी महाशय पोपटलालजी स्टेज पर उपस्थित हुए। आप ऋषिवर की सहोदरा भगिनी (प्रेमबाई) की तृतीय पीढ़ी की सन्तान हैं। आपने कहा कि—

> *''मैं बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष भगवान् दयानन्द का निकट सम्बन्धी हूँ – यह सोचकर मेरा हृदय अभिमान से भर उठता है। मैं अपने जीवन को कृतकृत्य तथा सफल समझता हूँ। अनेक व्यक्ति ऋषि के जन्मस्थान के विषय में संदिग्ध हैं। परन्तु मैं आज इस पवित्र वेदी पर उपस्थित होकर इस बात की घोषणा करता हूँ कि यह टंकारा ग्राम ही ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि है। इसके लिए मेरे पास बड़े–बड़े दो प्रमाण हैं। प्रथम यह कि*

ऋषि दयानन्द के पितृ महोदय ने बड़ी भक्तिपूर्वक जिस शिवमन्दिर की स्थापना की थी तथा जिसमें आसीन होकर मूलशंकर (ऋषि का बाल्य नाम) ने महाशिवरात्रि के पुण्य पर्व में संसार के कल्याण के लिए एक दिव्य, प्रतिमा-विरोधी सन्देश प्राप्त किया था, वह मन्दिर आज तक हमारे वंश में परम्परा से चला आ रहा है। द्वितीय प्रमाण यह है कि वह सौभाग्यशाली गृह भी हमारे ही पास है जिसमें ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ था। आप इन दोनों वस्तुओं को कल अपनी आँखों से प्रत्यक्ष कर चुके हैं। (करतल ध्वनि)

ऋषि के जन्मस्थान का पता लगाने के लिए यहाँ कितने ही जिज्ञासु तथा अन्वेषक आ चुके हैं। जब पण्डित लेखरामजी यहाँ आए थे तब तक हमें यही विदित था कि ऋषि दयानन्द क्रिश्चियन (ईसाई) थे। अतः अपने वंश की मान-रक्षा के निमित्त हमने उक्त पण्डितजी को अपना तथा ऋषि दयानन्द के जन्मस्थानादि का यथार्थ परिचय जानबूझ कर ही नहीं दिया था। कुछ साल बाद जब श्रीयुत् मुकर्जी महोदय (देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) यहाँ पधारे थे, तब हमने अपने प्रथम अज्ञान पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए उक्त मुकर्जी महोदय को अपना वास्तविक परिचय देकर उन्हें ऋषि दयानन्द के इन दोनों स्मृतिचिह्नों का दर्शन करा दिया तथा इस विषय में हमें जितना ज्ञान था वह सब भी उन्हें दे दिया।

अन्त में मैं भगवान् दयानन्द की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में यहाँ पधारे हुए आप ऋषि-भक्तों को अन्तर्हृदय से धन्यवाद देता हूँ।"[1]

इस लघु वक्तृता के बाद महाशय पोपटलालजी ने अपनी एक लिखित स्थापना जनता के सामने उपस्थित की। इसमें उन्होंने ऋषि दयानन्द के जन्मस्थान तथा वंशादि का यथार्थ परिचय दिया है। उनकी इस स्थापना को सत्य तथा प्रमाणित करते

---

1. सन्दर्भ ग्रन्थ : विजयशंकर सम्पादित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 21-22। -(सं०)

हुए मौरवी राज्य के पोलिस कमिश्नर ने उक्त लिखित पत्र पर राज्य के अधिकारी के रूपेण अपने हस्ताक्षर किये तथा इस सम्मेलन के अध्यक्ष श्रीमान् मौरवी नरेश (श्री महाराजा लखधीरसिंह जी ठाकोर) ने उसका अनुमोदन किया।[1]

पोपटलाल द्वारा उपस्थित की गई मूल गुजराती में लिखित स्थापना देवनागरी लिपि में[2]

प्रमुख माहानुभाव, पूज्य माहात्माओ, सज्जनो अने
सन्नारीओ ! आपनी पासे महर्षी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीना
वंश तथा त्हेमना कुळ जाती अने अंगत सबंधो विषे म्हारे बे शब्दो

---

1. पोपटलाल की इस हस्तलिखित स्थापना का अविकल स्वरूप 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' ग्रन्थ के पृष्ठ 22 तथा 23 के बीच में लगे हुए पन्नों में दिया गया है। उसे यहाँ आगे प्रस्तुत किया गया है। – (सं०)

2. पोपटलाल ने टंकारा शताब्दी महोत्सव में जो अपनी गुजराती में लिखित एक स्थापना जनता के समक्ष उपस्थित की थी, उसे हमने यहाँ देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया है। यहाँ हमने प्रत्येक पंक्ति में इतने ही शब्द एवं अक्षर रखे हैं, जितने उस मूल हस्तलिखित स्थापना में लिखे गए हैं, ताकि मिलान करने में पाठकों को सुविधा हो। जहाँ शब्द दो पंक्तियों में विभाजित हो गया है वहाँ योजक चिह्न (हाइफन) रखा गया है। वर्तनी वही रखी गई है जो मूल हस्तलेख में प्रयुक्त हुई है। उसे संशोधित नहीं किया गया है। कहीं-कहीं विराम चिह्न लगाए गए हैं, ताकि समझने में सुविधा रहे।

   डॉ० भवानीलाल भारतीय ने 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ के दोनों ही संस्करणों में 'शैशव और अध्ययन' वाले प्रकरण में पोपटलाल के इस वक्तव्य की तारीख 16 फरवरी, 1926 लिखी है, जो ठीक नहीं है। वस्तुतः यह टंकारा शताब्दी महोत्सव पाँच दिनों के लिए (7 से 11 फरवरी, 1926 ई० तक) आयोजित किया गया था। पोपटलाल ने अपना यह वक्तव्य एवं लिखित स्थापना इस महोत्सव के अन्तिम दिन अर्थात् 11 फरवरी, 1926 और बृहस्पतिवार के दिन प्रस्तुत की थी। (द्रष्टव्य : 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 4, 20-21) – (सं०)

कहेवा एवी शताब्दी सभाना कार्यकर्ताओनी रजा मळ्याथी आजे हुं आपनी पाशे मारो अंगत परीचय त्था ए सबंधी केटलीक माहीती रजु करवा उभो थयो छुं.

हुं स्वामीजीना भाणेजना वंशनो छुं अने ते बाबतमां जाणीता शोधक अने तटस्थ विद्वान बाबु देवेंन्द्रनाथ मुखरजीए पोतानी शोधखोळ अने जन्मस्थान वंश निर्णयवाळा प्रकरणमां जे वात जणावी छे ते अक्षरशः खरी छे.

हुं पोते ते वखते अज्ञान वश होवाथी बाबुजी ज्यारे महर्षी सबंधी तपास करवा आवेला त्यारे त्हेमने अमारा कुटुंबो तरफथी लगभग बे त्रण वखत त्हेमने पुरती माहेती आपेली नहीं. आवी ज रीते तेओ-ने त्था सदगत पंडीत लेखरामजीने पण स्वामीजीनो जन्म-मातापिता कुळ-जाति मेळवतां घणी मुश्केली नडेली. हुं पोते अने अमारा कुळ-ना घणाखरा एम मानता हता के स्वामीजीए अमारा कुळने कलंकीत कर्युं ते ख्रीस्ती थई गया वीगेरे अज्ञानने लीधे अने लोको अपवादना भयथी अमे त्हेमनी साथेनो सबंध बतावतां ब्हीता तो बीजाओ-नी वात ज शी करवी.

चोथी वखते छेल्ला बाबुजी (अहीं)[1] *आव्या त्यारे अमारा कुटुंबीओए अमारी खरी हकीकत जणावी त्था स्वामीजीना ज्यां ज्यां सगां हतां अने तेमणे जेमणे नजरे जोयेला त्हेमनां नाम त्था माहीती जेटली मळी शकी तेटली अपावी. स्वामीजी गमे ते ज्ञातिना (पो० क०)*[2] *हता एवुं एवी वात समाजना केटलाक वीरोधीओ फेलावे छे ते सर्वथा जुठा छे.*

---

1. हस्तलेख अस्पष्ट है । 'अहीं' शब्द प्रतीत होता है । - (सं०)
2. हस्तलेख में यहाँ पोपटलाल ने कुछ संशोधन किया है और फिर उस स्थान पर अपना नाम संक्षेप में 'पो० क०' (पोपटलाल कल्याणजी) लिखा है ।- (सं०)

एटलुं ज नहीं परंतु ते द्वेषपूर्वक फेलावेली वात छे.
जे स्वामीजी साथनो अमारो सबंध छे तेमनी वंशावळी आ
प्रमाणे छे. त्रवाडी करशनजी लालजीना दीकरा मुळशंकर
त्था वल्लभजी तेमां वल्लभजी गुजरी गयेला अने मुळशंकर उर्फे
दयानंद सरस्वती जे थई गया तो ते करसजी लालजीना पुत्र हता.
ते करशनजी त्रवाडी नीरवंश थवाथी तेमनां दीकरी प्रेमबाई ते रावल
मंगलजीनी साथे लग्न थयां तेना दीकरा बोघाने कबजो मळेलो. तेना
दीकरा कल्याणजी तेना दीकरा पोपटलाल त्था प्राणशंकर त्था प्राण-
शंकरना दीकरा केशवलाल छे अने ते गराश वल्लभजी करशनजीनी विधवा
ओरत अमारां मोघी मा ज्यां सुधी हयात हतां त्यां सुधी अमारा वडीलोनी
साथे रहेतां. त्यार बाद कबजो हालमां मारी पाशे छे. ते बधी हकीकत
देवेंन्द्रनाथ मुकरजीए जन्मस्थान निर्णयमां कहेल छे ते वांचवाथी
खात्री थशे.
मारे आ प्रसंगे आपने खास जणाववुं जोईए के हजु पण हुं आर्य समाजना
सिद्धांतोनो पुरे पुरी रीते जाणतो नथी. तेनी केटलीक बाबतमां तो
साव अजाण्यो छुं छतां आ वखतना मेळावडाथी म्हारूं घणुं अज्ञान
त्था भय दुर थयो छे अने मने आर्य समाज माटे प्रीती उत्पन्न थई छे
त्था मारा पूज्य वडील श्री महर्षी स्वामी दयानंद सरस्वती तरफ
म्हारूं शरिर झुकी जाय छे अने हुं त्हेमना सबंधी होवा माटे म्हने
अने मारा सर्व कुटुंबने भाग्यशाळी मानुं छुं.
आ शताब्दी महोत्स्व स्वामीजीना जन्मभुमी टंकारा खाते
उजववामां जे भाईओए श्रम लीधो होय ते सर्वने हुं
खरेखर अंतःकरण पुर्वक अभिनंन्दन आपुं छुं एटलुं ज नहीं परंतु
टंकारा तेमज मोरबीनी प्रजा पण भविष्यमां आ वात समजती

थशे एम हुं खात्री पुर्वक मानुं छुं. शताब्दीनो पाणी खातानो
प्रबंधनो कामनो बोजो स्टेट तरफथी मारे माथे होवाथी हुं आप-
नी कांई बीजी सेवा बजावी शक्यो नथी. ते माटे आप मने क्षमा करशो.
छेवटे एक महत्वनी वात म्हारे कहेवानी छे अने ते ए के
आपना सर्वना हृदयमां ज्हेने माटे मान उत्पन्न थयुं छे ते नामदार
माहाराजा मोरबी नरेश लखधीरजी साहेबनो हुं जेटलो आभारी
थाउ तेटलो ओछो छुं. त्हेमनी प्रजा तरीके तो म्हारे ते
नामदारनुं अनेक रीते शुभचिंन्तन अने (विनय अथवा दिल)[1] पुर्वक
विजय अने कुशळ इच्छवुं घटे परंतु महर्षीजीनो आ प्रदे-
शमां वधु जाणीता करी त्हेमना तरफ लोकोनो भक्ति
भाव वधे ते माटे ते नामदारे राज्य तरफथी कींमती मदद
आपी छे ते माटे अमारा वंशजो नामदार माहाराजा साहेबना
हमेशना रूणी रहेशे.
नामदार माहाराजा साहेबने दीर्घायु त्था यशस्वी जीवन
इच्छतां स्वामीजीनुं टंकारा खाते सुंदर अने उत्तम स्मारक
निर्माण थाय अने तेमां आखा इलाकाना आर्य बंन्धुओ
त्था नामदार माहाराजा साहेब त्था अन्य काठीयावाडना माहा-
राजाओ पण पोतानी बनती मदद करे एवी जाहेर प्रार्थना करी
म्हारूं आ बोलवानुं पूरूं करुं छुं.
फरी एक वखत आप सर्व दुरदेशथी पधारेला सर्व पुज्य
साधु सन्यासीओ विद्वानो त्था अन्य भाईओ त्था ब्हेनोने
पडेला परीश्रम त्था अगवड माटे आप सर्वनी क्षमा इच्छुं छुं.

---

1. हस्तलेख अस्पष्ट है । 'विनय' अथवा 'दिल' में से कोई एक शब्द प्रतीत होता है । - (सं०)

आपना फरी दर्शननी आशा राखतो बेसी जवानी रजा लउं छुं.

ओम शांन्ती शांन्ती शांन्ती.

तारीख 11.2.1926 टंकारा.

दा०[1]

(पोपटलाल कल्याणजी रावल) ते

स्वामीजीना भाणेजना वंशजो

प्रमुख

(हस्ताक्षर)

श्री वीरपूर नरेश[2]

ता० 11.2.1926

कालुभा राजमलजी राणा

(हस्ताक्षर)

पो० (कमि०)[3] मोरबी स्टेट

(हस्ताक्षर)

चु०[4] मनुभा पाताभाई सही

स्वागत प्रमुख श्री दयानंद जन्मभूमि (शताब्दी) सभा

---

1. 'दा०' हस्ताक्षर का द्योतक है। फारसी में हस्ताक्षर को दस्कत या दस्तखत कहते हैं। पोपटलाल के ये हस्ताक्षर उनके द्वारा दिए गए लिखित कथन की फोटो कापी जो 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' में छपी है, वहीं से लिए गए हैं। - (सं०)
2. वीरपुर नरेश का नाम श्री हमीरसिंह जी था। - (सं०)
3. हस्तलेख अस्पष्ट है। 'पो० कमि०' होना चाहिए। 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' पुस्तक के पृष्ठ 22 पर लिखा है - ''मौरवी राज्य के पोलिस कमिश्नर ने उक्त लिखित पत्र पर राज्य के अधिकारी रूपेण अपने हस्ताक्षर किये।'' - (सं०)
4. 'चु०' चुडासमा कुल-नाम का संक्षिप्त रूप प्रतीत होता है। - (सं०)

पोपटलाल के मूल गुजराती में लिखित कथन का हिन्दी अनुवाद

प्रमुख महानुभावो, पूज्य महात्माओ, सज्जनो तथा सन्नारियो ! आपके समक्ष महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के वंश तथा उनके कुल, जाति और निजी सम्बन्धों के विषय में मुझे दो शब्द कहने की शताब्दी महोत्सव के कार्यकर्ताओं की अनुमति मिलने पर आज मैं आपके समक्ष मेरा व्यक्तिगत परिचय और उस सम्बन्धित कुछ जानकारियाँ प्रस्तुत करने के लिए खड़ा हुआ हूँ।

मैं स्वामीजी के भानजे के वंश का हूँ और उस विषय के प्रसिद्ध शोधकर्ता एवं तटस्थ विद्वान् बाबू देवेन्द्रनाथ मुखरजी (मुखोपाध्याय) ने स्व-रचित जन्मस्थान निर्णय वाले प्रकरण में जो बातें प्रकट की हैं, वे अक्षरशः सत्य हैं।

बाबूजी जब महर्षि सम्बन्धी खोज करने के लिए पधारे थे, उस समय मैं स्वयं अज्ञानवश होने के कारण हमारे परिवार की ओर से प्रायः दो-तीन बार उनको पर्याप्त जानकारी प्रदान नहीं की गई थी। इसी प्रकार उन्हें तथा सद्गत पण्डित लेखरामजी को भी स्वामीजी के जन्म, माता-पिता, कुल, जाति के बारे में जानकारी प्राप्त करने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। मैं स्वयं और मेरे कुल के प्रायः सभी लोग यही मानते थे कि स्वामीजी ने हमारे कुल को कलंकित किया है, वे ईसाई हो गए थे - इत्यादि अज्ञान तथा लोक अपवाद के भय के कारण हम उनके साथ हमारा जो सम्बन्ध है, उसे बताने से डरते थे। फिर अन्य लोगों की तो बात ही क्या करें ?

चौथी और अन्तिम बार जब बाबूजी (यहाँ) आए थे तब हमारे

परिवारजनों ने अपने सम्बन्ध में सत्य हकीकत बताई और स्वामीजी के जहाँ-जहाँ सगे थे और जिन लोगों ने उन्हें प्रत्यक्ष देखा था, उनके नाम तथा जानकारी जितनी मिल सकी उतनी उन्हें दिलाई । स्वामीजी किसी फ़लानी जाति के थे - ऐसी-ऐसी बातें समाज के कुछ विरोधी लोग फैलाते हैं, वे सर्वथा झूठे हैं । इतना ही नहीं, वह बात द्वेष पूर्वक फैलाई गई है ।

जिस स्वामीजी के साथ हमारा सम्बन्ध है, उनकी वंशावलि इस प्रकार है - त्रवाड़ी (त्रिवेदी) करसनजी लालजी के पुत्र मूलशंकर तथा वल्लभजी । उनमें से वल्लभजी का निधन हो गया था और मूलशंकर उर्फ़ (अर्थात्) दयानन्द सरस्वती जो हुए वे करसनजी लालजी के पुत्र थे । करसनजी त्रवाड़ी निर्वंश होने से उनकी पुत्री प्रेमबाई जिनका विवाह रावल मंगलजी के साथ हुआ था, उनके पुत्र बोघा को क़ब्ज़ा (स्वामित्व) मिला था । उनके (बोघा के) पुत्र कल्याणजी, और उनके (कल्याणजी के) पुत्र पोपटलाल तथा प्राणशंकर । और प्राणशंकर के पुत्र केशवलाल हैं, और वह 'गराश' (जमींदारी व सम्पत्ति आदि का स्वामित्व) वल्लभजी करसनजी की विधवा स्त्री, हमारी मोंघी-माँ जब तक जीवित थीं तब तक हमारे पूर्वजों के साथ रहती थीं । तत्पश्चात् वर्तमान में वह क़ब्ज़ा (स्वामित्व) मेरे पास है । वह सब हकीकत देवेन्द्रनाथ मुखरजी ने जन्मस्थान निर्णय में प्रकट की है, जिसे पढ़ने से आपको निश्चय हो जाएगा ।

मुझे इस प्रसंग में आप लोगों को एक विशेष बात यह बतानी चाहिए कि आज भी मैं आर्य समाज के सिद्धान्तों को पूरी तरह से नहीं जानता हूँ । उसकी कई बातों के बारे में तो मैं नितान्त अनभिज्ञ हूँ । फिर भी इस (शताब्दी) महोत्सव से मेरा बहुत-सा अज्ञान एवं भय दूर हो गया है । मुझ में आर्य समाज के लिए अब प्रीति उत्पन्न हो गई है । और मेरे पूज्य पूर्वज

श्री महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रति मैं प्रणिपात करता हूँ - नमन करता हूँ। उनके सम्बन्धी होने के कारण मैं स्वयं को तथा मेरे पूरे घराने को भाग्यशाली समझता हूँ।

यह शताब्दी महोत्सव स्वामीजी की जन्मभूमि टंकारा में आयोजित करने के लिए जिन लोगों ने परिश्रम किया है, उन सभी का मैं वास्तव में अन्तःकरण पूर्वक अभिनन्दन करता हूँ। इतना ही नहीं, बल्कि टंकारा तथा मौरवी की प्रजा भी भविष्य में यह बात को समझने लगेगी ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। शताब्दी के जल विभाग के प्रबन्ध के काम का भार स्टेट की ओर से मेरे शिर पर होने से मैं आप लोगों की कुछ अन्य सेवा नहीं कर पाया हूँ। इसके लिए कृपया आप मुझे क्षमा करें। अन्त में मुझे जो एक महत्त्व की बात कहनी है, वह यह है कि आप सभी के हृदय में जिनके प्रति मान उत्पन्न हुआ है, वे नामदार महाराजा मौरवी नरेश लखधीरजी साहब का मैं जितना आभारी रहूँ उतना कम हूँ। उनकी प्रजा के रूप में तो मैं उस नामदार का अनेकशः शुभचिन्तन और विनय (अथवा दिल) पूर्वक विजय और कुशलता की कामना करता ही हूँ, परन्तु महर्षि जी को इस प्रदेश में अधिकाधिक प्रसिद्ध कर, उनके प्रति लोगों का भक्ति-भाव बढ़े, उसके लिए उस नामदार ने राज्य की ओर से क़ीमती मदद की है, उसके लिए हमारे वंशज नामदार महाराजा साहब के सदैव ऋणी रहेंगे।

नामदार महाराजा साहब की दीर्घायु तथा यशस्वी जीवन के लिए कामना करता हुआ, स्वामीजी का टंकारा में एक सुन्दर और उत्तम स्मारक का निर्माण हो और उसमें समस्त प्रदेश के आर्य बन्धुओं तथा नामदार महाराजा साहब तथा अन्य काठियावाड़ के महाराजाओं भी अपनी यथासामर्थ्य सहायता प्रदान करें - ऐसी सार्वजनिक प्रार्थना कर मैं मेरे वक्तव्य को विराम देता हूँ।

एक बार पुनः आप सभी दूर देश से पधारे हुए सर्व पुज्य साधु-संन्यासियों, विद्वानों तथा अन्य भाइयों तथा बहिनों को उठाने पड़े परिश्रम और असुविधा के लिए आप सभी की क्षमा चाहता हूँ। आपके पुनः दर्शन की आशा रखता हुआ मैं अब बैठ जाने की अनुमति चाहता हूँ। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

तारीख 11.2.1926 टंकारा

(हस्ताक्षर) पोपटलाल कल्याणजी रावल (वह)

स्वामीजी के भानजे के वंशज

प्रमुख	*कालुभा राजमलजी राणा*
(हस्ताक्षर)	*(हस्ताक्षर)*
श्री वीरपुर नरेश	*पो० (कमि०) मौरवी*
ता० 11.2.1926	*स्टेट*
	(हस्ताक्षर)
	चु० मनुभा पाताभाई सही
	स्वागत प्रमुख श्री दयानन्द जन्मभूमि (शताब्दी) सभा

1926 ई० में टंकारा में आयोजित टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव में ऋषि के बालसखा इब्राहीम का निर्णायक वक्तव्य

महाशय पोपटलालजी के बैठ जाने के बाद एक अत्यन्त वृद्ध किसान शनैः शनैः लकड़ी टेकता हुआ स्टेज पर आकर उपस्थित हुआ। यह था ऋषि दयानन्द का बाल्य सखा इब्राहीम। इस समय इसकी आयु 103 साल थी। बालक मूलशंकर तथा यह दोनों बालकपन में एकसाथ खेला करते थे। ऋषि के इस बाल्य सखा को इस तरह अचानक अपने सामने खड़ा देखकर सभा-मण्डप में सर्वत्र सन्नाटा छा गया। सारी सभा इस जीर्ण-शीर्ण परन्तु अमित भाग्यशाली व्यक्ति को अपने विस्फारित नेत्रों से निहारने लगी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वृद्ध इब्राहीम के साथ अब भी ऋषि दयानन्द इस मण्डप में उपस्थित है। देर तक पण्डाल में सन्नाटा खिंचा रहा। अन्त में उस गम्भीरता को छिन्न-भिन्न करते हुए उस स्थविर (वृद्ध व्यक्ति) ने अत्यन्त कम्पमान स्वर में कहना प्रारम्भ किया। बालक मूलशंकर के साथ खेलकूद में बीते हुए बचपन के उन सुखी दिनों का स्मरण कर उसका रोम-रोम रोमाञ्चित हो गया था और उसके दोनों क्षीण नेत्रों से आनन्द की अविरल अश्रुधाराएँ बह रही थीं। इब्राहीम ने कहा -

"जिन्हें आप लोग ऋषि दयानन्द कहते हैं तथा आज समग्र भारतवर्ष में ही नहीं प्रत्युत सारा संसार जिनकी विद्वत्ता और महत्ता पर मुग्ध है, उन भगवान् के साथ मैं इसी टंकारा ग्राम की भूमि में, इसी डेमी नदी के रेतीले मैदानों पर, इन्हीं खेतों के अन्दर, इन्हीं वनमालाओं में कई साल तक बचपन में खेलता रहा हूँ। मुझे आज भी उनकी वह बचपन की मुग्ध सूरत स्मरण है। उनकी आँखों में मुग्धता और तेज, उनके शरीर में सौन्दर्य और बल, उनके चेहरे पर सरलता और आग्रह, उनकी वाणी में मृदुता और ओज कूट-कूट कर भरा हुआ था। कितनी ही बार इसी स्थान पर जहाँ आज यह पण्डाल सुशोभित है, मैंने उनके साथ बाल्य क्रीड़ाएँ की थीं। कितनी ही

बार इस डेमी नदी की धारा में मैं और वे हँसते-खेलते तैरे हैं। कितनी ही बार उनके बाल्य शरीर के साथ मैंने कुश्ती और मारपीट की है। यद्यपि मूलशंकर आयु में मुझ से दो साल छोटे थे तथापि उनके गोर शरीर में बड़ा बल था। वे अकेले ही मुझे और मेरे साथियों को बाल्य-संग्राम में पराजित कर दिया करते थे। सच पूछिये तो मूलजी बड़े उपद्रवी और हठी थे। परन्तु निर्बलों के साथ उनकी बड़ी सहानुभूति रहती थी। उनके पिताजी का नाम करसनजी त्रिवेदी था। करीब 23 साल की उम्र में हमने सुना था कि वह अपनी सारी सम्पत्ति को ठुकरा कर घर से भाग गया है और कहीं जाकर संन्यासी हो गया है। उनके पिताजी ने उनकी बड़ी खोज की थी। घर छोड़ देने के बाद मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं उनके फिर भी दर्शन करता। परन्तु उसके बाद वे कभी इस ग्राम में लौटे ही नहीं और मेरी वह ख्वाहिश (इच्छा) अधूरी ही रह गई!

मैं महाशय पोपटलालजी के वचन की ताईद (समर्थन) करता हूँ और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिस मकान में इस समय महाशय पोपटलालजी के भाई प्राणशंकर रहते हैं, वही स्वामी दयानन्द का जन्मगृह है। तथा यह मन्दिर भी वही मन्दिर है जिसमें दयानन्दजी के पिता करसनजी लम्बी चौड़ी उपासनाएँ किया करते थे। वे मूलजी को भी कभी-कभी इस मन्दिर में अपने साथ ले जाया करते थे।"

वृद्ध इब्राहीम के इस अद्‌भुत प्रत्यक्ष दर्शन के वर्णन को सुनकर सारी सभा पुलकित हो उठी। सब के हृदय गद्‌गद और आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं।[1]

• • •

1. 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 22-24 । इब्राहीम का एक वास्तविक चित्र इसी 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' पुस्तक के पृष्ठ 20 और 21 के बीच में लगे पन्ने में दिया गया है। मगर यह चित्र अत्यन्त अस्पष्ट है। इस चित्र में इब्राहीम के साथ एक ऊँचा पुरुष (यह पोपटलाल हो सकते हैं, ऐसा प्रतीत होता है) और एक महिला भी खड़ी दिखाई देती है। - (सं०)

परिशिष्ट : 5

मौरवी नरेशों के ऋषि दयानन्द सम्बन्धी वक्तव्य

1. मौरवी नरेश श्री वाघजी ठाकुर (ठाकोर)

(1858-1922 ई० - शासनकाल : 17.2.1870 - 11.6.1922)

मौरवी नरेश श्री वाघजी ठाकोर का महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में मन्तव्य प्रकट करता हुआ एक विवरण 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' (फर्रुखाबाद) मासिक में प्रकाशित हुआ था। प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने उसे लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित उर्दू ग्रन्थ 'मुकम्मल जीवन चरित्र महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती' के हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' के प्रथम भाग में पृष्ठ 573-574 पर प्रकाशित किया है, जिसे यहाँ उद्धृत किया जाता है -

ऋषि दयानन्द और राजा मौरवी :

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्मस्थान राजस्थान[1] रियासत मौरवी में स्थित है। महर्षि के सम्बन्ध में राजा साहिब मौरवी के क्या विचार हैं इसका पता हाल ही में लगा है। जबकि महाराजा साहिब लाहौर में पधारे और सनातन धर्म सभा के एक डेपुटेशन[2] ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना की कि वे

---

1. 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' मासिक में मुद्रण दोष अथवा भूलवश गुजरात की अपेक्षा राजस्थान छप गया। - प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

2. देवेन्द्रनाथ के अनुसार श्री वाघजी ठाकुर ने ऋषि के सम्बन्ध में यह मन्तव्य लाहौर की स्थानिक धर्मसभा के द्वारा उनको दिए गए एक मानपत्र के उत्तर में प्रकट किया गया था। (द्रष्टव्य : 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय', पृष्ठ 66) - (सं०)

सनातनधर्मी होने के कारण दयानन्द के मत से सनातन धर्म की रक्षा करें। जिसके उत्तर में राजा साहिब ने कहा कि –

"आपका अभिप्राय किस दयानन्द से है ? यदि आपका प्रयोजन उस दयानन्द से है कि जिसके जन्मस्थान का अभिमान मेरी रियासत को उपलब्ध है, तो आपकी बड़ी भूल है। उसने डूबते हुए सनातन धर्म को बचा लिया। यदि इस महान् पुरुष का जन्म न होता तो आज समस्त हिन्दू ईसाई और मुसलमान हो गए होते और आपकी वर्तमान सनातन धर्म सभा का नाम मात्र भी न रहता। मेरे हृदय में उस दयानन्द के लिए महती पूज्य बुद्धि है और मुझे अभिमान है कि उनके सम्बन्धी (कुटुम्बी) इस समय तक मेरी रियासत में बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त हैं।"

हमारे विचार में महाराजा साहिब की सम्मति से आ० स० (आर्य समाज) के नास्तिक और आस्तिक विरोधियों को लज्जा से मुख छिपा लेना चाहिए, जो ऋषि दयानन्द के जन्म स्थान आदि के विषय में अनेक प्रकार (की) मिथ्या जनश्रुति फैला रहे हैं।

– भारत सुदशा प्रवर्त्तक, माह मई, ***सन् 1911***[1]*, पृष्ठ 8*

---

1. प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने डॉ० कुशलदेव शास्त्री के 'महर्षि दयानन्द : काल और कृतित्व' ग्रन्थ (प्रकाशन वर्ष 2009 ई०) की विस्तृत 'भूमिका' लिखी है। इस 'भूमिका' में पृष्ठ 15 पर लिखा है कि महाराजा मौरवी **1910 ई०** में लाहौर पधारे थे और ऋषि सम्बन्धी उनका यह वक्तव्य 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' के मई **1910 ई०** के अंक के पृष्ठ 8 पर प्रकाशित हुआ था।

   लक्ष्मण आर्योपदेशक लिखित उर्दू ग्रन्थ 'निष्कलंक दयानन्द' के प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' द्वारा किए गए हिन्दी अनुवाद (प्रकाशन वर्ष 2010 ई०) के 'प्राक्कथन' में पृष्ठ 12 पर प्रा० 'जिज्ञासु' ने लिखा है कि मौरवी नरेश **1910 ई०** में लाहौर पधारे थे।

लक्ष्मण आर्योपदेशक कृत उर्दू ग्रन्थ 'मुकम्मल जीवन-चरित्र महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती' के प्रा० 'जिज्ञासु' द्वारा किए गए हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' (प्रकाशन वर्ष 2012 ई०) के पृष्ठ 573-574 पर दिए गए इस उपर्युक्त विवरण के नीचे 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक, माह मई, **सन् 1911**, पृष्ठ 8' लिखा गया है। उसी ग्रन्थ के पृष्ठ 406 पर प्रा० 'जिज्ञासु' ने लिखा है - "आपने (मौरवी नरेश ने) **सन् 1910** में लाहौर में भी ऋषि के मोरबी की प्रजा होने पर गौरव व्यक्त किया।" पुनः उसी ग्रन्थ में पृष्ठ 66 पर दी गई अपनी पाद-टिप्पणी में प्रा० 'जिज्ञासु' ने लिखा है कि लाहौर में मौरवी नरेश वाघजी को सनातन धर्मी शिष्ट-मण्डल **1909** में मिला था और मौरवी नरेश ने उस शिष्ट-मण्डल के समक्ष ऋषि के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया था वह 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' के मई **1910** के पृष्ठ 8 पर छपा था।

वैसे तो उपरोक्त विवरण 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' के मई **1910** ई० के अंक के पृष्ठ 8 पर प्रकाशित होने की सम्भावना अधिक लगती है। फिर भी मौरवी नरेश श्री वाघजी ने लाहौर में यह वक्तव्य किस वर्ष में दिया था और उसका उपर्युक्त विवरण 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' के किस वर्ष के मई के अंक के पृष्ठ 8 पर प्रकाशित हुआ था, यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता तो है ही। - (सं०)

मौरवी नरेश श्री वाघजी ठाकुर की ऋषि दयानन्द से भेंट :

मौरवी नरेश श्री वाघजी ठाकुर (गुजराती में ठाकोर) की ऋषि दयानन्द से प्रथम भेंट 1875 ई० में राजकोट में और दूसरी भेंट 1882 ई० में मुम्बई में होने का विवरण हमें ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्रों में मिलता है।

प्रथम भेंट :

31 दिसम्बर, 1874 को ऋषि दयानन्द राजकोट पहुँचे थे और 18 जनवरी, 1875 तक उन्होंने वहाँ निवास किया।

पण्डित लेखराम ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र' में लिखा है - "रियासत मौरवी के महाराजा साहब से जब मैंने पण्डित काशीराम सेवकराम औदीच्य एम० ए० हेडमास्टर हाईस्कूल मौरवी के द्वारा पूछा तो उन्होंने कहा कि

जब स्वामीजी राजकोट में पधारे थे, उन दिनों हम वहाँ के राजकुमार कॉलेज में पढते थे और वहाँ पर वे हमारे कॉलेज में भी प्रिन्सिपल साहब से मिलने के लिए आये थे। हमने उनके दर्शन किए हैं और पूछने से विदित हुआ कि वह रियासत मौरवी के रहने वाले थे।" (पृष्ठ 35)

पण्डित लेखराम ने इसी ग्रन्थ में आगे लिखा है – "उन दिनों वहाँ गवर्नर का दरबार हो रहा था। ... वहाँ एक राजकुमार पाठशाला है, जिसमें गुजरात प्रदेश के समस्त रईसों के लड़के पढ़ते हैं। उन दिनों वर्तमान राजा मौरवी (श्री वाघजी ठाकुर) भी वहाँ शिक्षा पाते थे और कई राजकुमार व्याख्यानों में आते थे। वर्तमान महाराजा मौरवी ने पण्डित काशीराम एम० ए० उदीच्य (औदीच्य), हेडमास्टर मौरवी से कहा था कि हमने भी वहाँ स्वामीजी का व्याख्यान सुना है। एक दिन वहाँ के अध्यापक लोग स्वामीजी को पाठशाला (कॉलेज) दिखलाने के लिए ले गए। वहाँ के प्रिन्सिपल साहब ने स्वामीजी को कहा कि आप राजकुमारों को उपदेश दें। स्वामीजी ने उनको भली प्रकार शास्त्रोक्त शिक्षा दी।" (पृष्ठ 252-253)

पण्डित लेखराम के उक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि मौरवी नरेश की ऋषि दयानन्द से भेंट राजकुमार कॉलेज में हुई थी।

वैसे कॉलेज में तो ऋषि का एक ही व्याख्यान होने का उल्लेख मिलता है। मगर यहाँ तो कई राजकुमारों द्वारा स्वामीजी के 'व्याख्यानों' (बहुवचन) में आने की बात लिखी गई है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि कई राजकुमारों ने राजकोट में अन्य स्थानों पर आयोजित स्वामीजी के व्याख्यान भी सुने थे।

देवेन्द्र बाबू ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' में दिए गए इस राजकोट यात्रा के वृतान्त में ऋषि दयानन्द के राजकुमार कॉलेज में दिए गए व्याख्यान का एवं राजकोट में उस समय आयोजित काठियावाड़ के राजगण के सम्मेलन की बात तो लिखी है, किन्तु वहाँ उन्होंने न तो मौरवी नरेश के नाम का उल्लेख किया है और न ही उनसे हुई ऋषि की भेंट अथवा इन दोनों के बीच हुए

किसी वार्तालाप की कोई बात लिखी है। (द्रष्टव्य : पृष्ठ 294-298) हाँ, उन्होंने कांगड़ी गुरुकुल के 'वैदिक मैगज़ीन' के फरवरी 1916 के अंक में प्रकाशित अपने लेख 'The Birth place and Parentage of Swami Dayanand' (द बर्थ प्लेस् एन्ड पेरन्टैज ऑफ़ स्वामी दयानन्द) में एवं 1916 ई० में प्रकाशित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती जन्मस्थान निर्णय' (बँगला) ग्रन्थ में मौरवी नरेश के दीवान भाणजी कानजी द्वारा 13 जून, 1912 को उन्हें अंग्रेजी में लिखे गए निम्नलिखित पत्र को उद्धृत किया है –

Hill Buildings,
Dewan Office
Morvi, 13th June 1912

Dear Mr. Mukerji,

In reply to your letter dated 8th instant, I am to say under orders from H.H. the Maharaja, that H.H. has the pleasure to attend a lecture delivered by late Swami Dayanand Saraswati in 1875 in Rajkot and that after the lecture the Swamiji met H.H. and in the course of conversation told H.H. that he was born in his state and was his subject, when H.H. expressed his great pleasure to him to hear it and said, he felt so proud to have such a jewel born in his state.

On other points H.H. has nothing of information to communicate.

Yours truly,
BHANAJI KANJI.

इस पत्र में लिखा गया है कि - "1875 ई० में राजकोट में महाराजा साहब (श्री वाघजी ठाकुर) को स्वामीजी का एक व्याख्यान सुनने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। उस व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी महाराजा साहब से मिले थे और

वार्तालाप के मध्य में उन्होंने महाराजा को कहा था कि – मेरा जन्म मौरवी के राज्य में हुआ है और मैं आपकी प्रजा हूँ। यह सुनकर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि – मेरे राज्य में ऐसे अमूल्य रत्न ने जन्म ग्रहण किया है इस बात का मुझे गर्व है।"[1]

मौरवी नरेश के दीवान के इस पत्र से यह स्पष्ट नहीं होता है कि मौरवी नरेश ने राजकोट में किस स्थान पर आयोजित स्वामीजी का यह व्याख्यान (राजकोट में स्वामीजी के 10-12 व्याख्यान हुए थे) सुना था कि जिसके पश्चात् दोनों के बीच उक्त वार्तालाप हुआ था। हाँ, 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय' के परिशिष्ट में पृष्ठ 100 पर देवेन्द्र बाबू ने मौरवी नरेश की ऋषि से राजकुमार कॉलेज में भेंट होने की बात लिखी है, मगर वहाँ उन्होंने इस बात का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है।

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने पण्डित लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित मूल उर्दू ग्रन्थ 'मुकम्मल जीवन चरित्र महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती' के हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' के प्रथम भाग में पृष्ठ 406 पर दी गई अपनी सम्पादकीय पाद-टिप्पणी क्रमांक 4 में लिखा है – "इस कॉलेज से जुड़ी अन्य बातें भी उल्लेखनीय हैं जिन्हें यहाँ संक्षेप में दिया जाता है। राजकुमारों का जब ऋषि से परिचय करवाया गया तब मोरबी के राजकुमार से मिलकर

---

1. यह पत्र विजयशंकर रचित 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' ग्रन्थ में पृष्ठ 71 पर भी दिया गया है।

इस पत्र को उद्धृत कर देवेन्द्र बाबू ने लिखा है – "इस पत्र के पढ़ने के पश्चात् इसमें कोई संशय नहीं रहता कि भगवान् दयानन्द मौरवी राज्य के रहनेवाले थे।" (द्रष्टव्य : 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित', परिशिष्ट 1, पृष्ठ 628। वस्तुतः यह परिशिष्ट 1 कांगड़ी गुरुकुल के 'वैदिक मैगज़ीन' के फरवरी 1916 के अंक में प्रकाशित देवेन्द्र बाबू के लेख 'The Birth place and Parentage of Swami Dayanand' (द बर्थ प्लेस् एन्ड पेरन्टेज ऑफ़ स्वामी दयानन्द) का हिन्दी अनुवाद है। – (सं०)

महर्षि कुछ भावुक होकर बोले — 'मैं तो आपकी प्रजा हूँ।' इस भेंट व इस कथन को वाघजी ने टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव पर भी सुनाया था।''

लक्ष्मण आर्योपदेशक ने अपने इस ग्रन्थ में यह तो लिखा है कि – ''उन दिनों मोरबी के राजकुमार वाघजी भी वहाँ (अर्थात् राजकुमार पाठशाला में) शिक्षा प्राप्त करते थे। राजकोट में श्री स्वामीजी के कई व्याख्यान हुए। राजकुमार कॉलेज में अध्ययन करनेवाले कई राजकुमार भी श्री स्वामीजी के प्रवचन सुनने के लिए आते थे। वर्तमान मोरबी महाराज (वाघजी ग्रन्थ लेखन के समय मोरबी के शासक थे) ने भी यहाँ (अर्थात् राजकोट में) स्वामीजी का व्याख्यान सुना था।'' (प्रथम भाग, पृष्ठ 406) मगर राजकोट में किस स्थान पर आयोजित स्वामीजी के व्याख्यान को श्री वाघजी ने सुना था – यह लक्ष्मण आर्योपदेशक ने नहीं लिखा है। यह भी ध्यातव्य है कि पण्डित लेखराम के समान उन्होंने भी यहाँ – 'कई राजकुमार भी श्री स्वामीजी के प्रवचन सुनने के लिए आते थे' – ऐसा ही लिखा है अर्थात् प्रवचन (बहुवचन) का ही प्रयोग किया है। लक्ष्मण आर्योपदेशक ने राजकोट यात्रा के इस वृत्तान्त में मौरवी नरेश और ऋषि के बीच हुई भेंट अथवा वार्तालाप का कोई उल्लेख नहीं किया है।

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' का यह कथन कि – ''इस भेंट व इस कथन ('मैं तो आपकी प्रजा हूँ।') को वाघजी ने टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव पर भी सुनाया था।'' सही नहीं है। वस्तुतः 1926 ई० में आयोजित टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव में वाघजी ठाकुर नहीं, बल्कि उनके उत्तराधिकारी तत्कालीन मौरवी नरेश लखधीरजी ठाकुर पधारे थे। वाघजी का तो 1922 ई० में निधन हो गया था।

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने डॉ० कुशलदेव शास्त्री के 'महर्षि दयानन्द : काल और कृतित्व' ग्रन्थ की 'भूमिका' में पृष्ठ 15 पर इसी भ्रान्ति के कारण उप-शीर्षक दिया है – 'मौरवी नरेश श्री लखधीरसिंह लाहौर में', और उसी के अन्तर्गत लिखा है – ''श्रीमान् पं० लक्ष्मणजी आर्योपदेशक ने अपनी एक

पुस्तक में मौरवी के महाराजा लखधीरसिंहजी के लाहौर आगमन की एक अधूरी, परन्तु महत्त्वपूर्ण घटना दी है।" प्रा० 'जिज्ञासु' ने अपनी इस 'भूमिका' में 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' में छपा विवरण प्रस्तुत कर आगे लिखा है कि – "1926 में जब टंकारा में ऋषि की जन्म शताब्दी मनाई गई थी तो उसकी अध्यक्षता महाराजा लखधीरसिंहजी ने ही की थी। आपने वहाँ भी यह मधुर प्रसंग सुनाया था।" (पृष्ठ 16)

वस्तुतः टंकारा में आयोजित जन्म शताब्दी महोत्सव में महाराजा लखधीरसिंहजी द्वारा ऋषि सम्बन्धी किसी मधुर प्रसंग को सुनाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि उनकी तो ऋषि से कभी भेंट ही नहीं हुई थी। 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव' ग्रन्थ में पृष्ठ 11 से लेकर 13 तक 'सभापति का उत्तर' (अर्थात् श्री लखधीरसिंहजी का टंकारा शताब्दी महोत्सव में दिया गया वक्तव्य) प्रकाशित हुआ है, उसमें उनके द्वारा ऐसे किसी 'मधुर प्रसंग' को सुनाए जाने का वर्णन नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि प्रा० 'जिज्ञासु' को श्री वाघजी ठाकोर तथा उनके उत्तराधिकारी श्री लखधीरजी ठाकोर के विषय में भ्रान्ति हुई है। इस भ्रान्ति का सम्भावित कारण यह लगता है कि 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' में छपे विवरण में केवल 'राजा साहिब मोरवी', 'महाराजा साहिब' आदि ही लिखा गया है; उसमें श्री वाघजी ठाकोर के नाम का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।

डॉ० भवानीलाल भारतीय ने लिखा है कि – "इसी (1875 ई० में राजकोट में आयोजित काठियावाड़ के राजाओं के सम्मेलन के) अवसर पर उनकी (महर्षि की) भेंट मौरवी नरेश सर वाघजी से हुई थी। वार्त्तालाप के प्रसंग में महर्षि ने नरेश को बताया कि वे उनकी ही प्रजा है ।" (द्रष्टव्य : 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती', प्रथम भाग, पृष्ठ 444) डॉ० भारतीय के इस कथनानुसार उक्त वार्त्तालाप राजाओं के इस सम्मेलन के अवसर पर हुआ था। मगर राजकोट में राजाओं के इस सम्मेलन को महर्षि ने किस स्थान पर सम्बोधित किया था, उसका निर्देश डॉ० भारतीय ने भी नहीं किया है।

अत: लगता है कि राजकोट में किस स्थान पर आयोजित स्वामीजी के व्याख्यान में मौरवी नरेश श्री वाघजी ठाकुर श्रोता के रूप में उपस्थित हुए थे और दोनों के बीच उक्त वार्त्तालाप हुआ था – यह विषय अन्वेषण की अपेक्षा रखता है।

द्वितीय भेंट :

ऋषि दयानन्द का मुम्बई का अन्तिम प्रवास 30 दिसम्बर 1881 से लेकर 24 जून 1882 पर्यन्त रहा। यहाँ उनके अनेक व्याख्यान हुए। 5 फरवरी 1882 को ऋषि का 'मनुष्योन्नति' विषय पर एक व्याख्यान 'हालाई भाटिया महाजनवाड़ी' में हुआ।

इस मुम्बई प्रवासकाल में ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों का सार आर्यसमाज काकड़वाड़ी (मुम्बई) के मन्त्री द्वारा उसी समय सभा की कार्यवाही-संग्रह में गुजराती भाषा में लिखा जाता था। ऋषि के उपर्युक्त व्याख्यान की कार्यवाही में लिखा है – "इस व्याख्यान में अध्यक्ष पद पर मौरवी के ठाकुर साहब वाघजी बहादुर राजा विराजमान थे। और उन्होंने स्वामीजी को उनके उत्कृष्ट श्रम (व्याख्यान) के लिए उपकार माना।" (द्रष्टव्य : 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन', पृष्ठ 496)

पण्डित लेखराम संगृहीत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र' में दिए गए इस मुम्बई प्रवास के विवरण में उक्त व्याख्यान का उल्लेख नहीं है और न ही मौरवी नरेश का वहाँ नामोल्लेख किया गया है।

देवेन्द्र बाबू ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' में इस व्याख्यान के सम्बन्ध में लिखा है – "फरवरी (1882 ई०) में एक वक्तृता महाजन वाड़ी में हुई थी। उसमें सेठ लछमनदास खेमजी (सेठ लक्ष्मीदास खीमजी) के साथ ठाकुर साहब मौरवी भी पधारे थे। वक्तृता की समाप्ति पर जब ठाकुर साहब सभा-स्थल से जाने लगे तो महाराज ने उनके पास जाकर कहा कि ठाकुर साहब आप जाने में इतनी शीघ्रता क्यों करते हैं ? जो कुछ व्याख्यान में आपने सुना वह सब आपका ही

है। ठाकुर साहब इस बात को न समझ सके तब महाराज ने उनसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि वक्तृता देनेवाला आपके ही राज्य का रहनेवाला है।" (पृष्ठ 566)

डॉ० भवानीलाल भारतीय ने लिखा है कि – "इस व्याख्यान में सभापति का आसन मौरवी नरेश ठाकोर साहेब बाघजी बहादुर ने ग्रहण किया था।" (द्रष्टव्य : 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती', द्वितीय भाग, पृष्ठ 760)

लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित उर्दू ग्रन्थ 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' के प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' कृत हिन्दी अनुवाद के द्वितीय भाग में पृष्ठ 556-557 पर इस व्याख्यान एवं मौरवी नरेश की ऋषि से हुई भेंट के सम्बन्ध में जो विवरण दिया गया है वह मूल लेखक लक्ष्मण आर्योपदेशक द्वारा लिखा गया प्रतीत नहीं होता है। उसमें आए "यह ग्रन्थ के प्रथम भाग में हम दे चुके हैं" – इस वाक्य से प्रतीत होता है कि यह विवरण मूल लेखक द्वारा लिखा गया नहीं है, परन्तु अनुवादक-सम्पादक प्रा० 'जिज्ञासु' द्वारा जोड़ा गया है। ध्यातव्य है कि इसमें भी यह लिखा गया है कि मौरवी नरेश इस व्याख्यान के सभापति थे।

1875 ई० में राजकोट में हुई प्रथम भेंट के समय श्री वाघजी ठाकुर केवल 16 वर्षीय छात्र थे। उसके लगभग 7 वर्ष पश्चात् 1882 ई० में मुम्बई में ऋषि से उनकी यह द्वितीय भेंट हुई थी। अतः सम्भव है कि उस प्रथम भेंट के समय हुई बात को वे विस्मृत कर गए होंगे – ऐसा सोचकर अथवा प्रसंगवश ही ऋषि ने मुम्बई में हुई इस भेंट में अपने जन्मस्थान विषयक बात मौरवी नरेश को पुनः कही हो।

क्या 1877 ई० में आयोजित 'दिल्ली दरबार' में श्री वाघजी ठाकुर की ऋषि दयानन्द से भेंट हुई थी ?

पण्डित लेखराम ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र' में लिखा है – "1876 ई० के अन्त में (वास्तव में 1 जनवरी, 1877 ई० के दिन आयोजित) दिल्ली में जो शाही दरबार हुआ था उसमें काठियावाड़ के कुछ रईस भी पधारे थे। उन्होंने स्वामीजी को मूलशंकर नाम से पुकारा था, जिन्हें स्वामीजी ने अलग ले जाकर ऐसा करने से रोक दिया था।" (पृष्ठ 20)

देवेन्द्र बाबू पण्डित लेखराम की उक्त बात का प्रतिवाद करते हैं। उनका मत है कि मौरवी नरेश श्री वाघजी ठाकुर दिल्ली के शाही दरबार में सम्मिलित तो हुए थे, मगर उस समय उनकी भेंट ऋषि दयानन्द से हुई थी – यह बात संशयग्रस्त है। इस सम्बन्ध में देवेन्द्र बाबू ने मौरवी के दीवान से भी पूछा था। दीवान ने 2 जुलाई, (1916 ई०) को देवेन्द्र बाबू को लिखे पत्र में सूचित किया कि - "His Highness cannot definitely say whether he met Swami Dayanand Saraswati at the Delhi Darbar of 1877." अर्थात् "महाराजा साहब (मौरवी नरेश) निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकते हैं कि वे 1877 ई० में आयोजित दिल्ली दरबार के समय स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिले थे या नहीं।" मौरवी के दीवान के इस पत्र के आधार पर देवेन्द्र बाबू यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि मौरवी नरेश को दिल्ली दरबार के केवल दो वर्ष पूर्व 1875 ई० में राजकोट में ऋषि से हुई भेंट का तो ठीक स्मरण है (द्रष्टव्य : मौरवी के दीवान का देवेन्द्र बाबू को 13 जून, 1912 को लिखा गया पत्र जो इसी पुस्तक के पृष्ठ 152 पर उद्धृत है), मगर दिल्ली दरबार के समय हुई भेंट के बारे में उनको संशय है – इससे यही अनुमान किया जाना उचित है कि दिल्ली दरबार के समय उनकी स्वामीजी से भेंट हुई ही नहीं है।[1]

दिल्ली दरबार के सन्दर्भ में प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने लिखा है – "राजाओं महाराजाओं ने स्वामीजी के निकट आने का साहस ही न दिखाया। बात ऐसी नहीं थी कि उनके पास समय का अभाव था। राजा लोग निस्तेज तथा साहस शून्य हो चुके थे। वे अंग्रेज़ से डरते थे। अंग्रेज़ नहीं चाहते थे कि देशवासी इस महाप्रतापी, प्रखर देशभक्त तथा स्वराज्य का शंख फूँकने वाले संन्यासी का सन्देश सुनें।" (लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित उर्दू जीवन-चरित्र के हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' के प्रथम भाग में पृष्ठ 471 पर दी गई दूसरी पाद-टिप्पणी)

डॉ० भवानीलाल भारतीय का भी एतद्-विषयक मत कुछ ऐसा ही है।

---

1. द्रष्टव्य : 'स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय', पृष्ठ 99-100। – (सं०)

'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' के प्रथम भाग में पृष्ठ 513 पर उन्होंने लिखा है – ''सम्भावना यह भी है कि स्वामीजी के देशोद्धार के व्यापक कार्यक्रम तथा देश में सार्वत्रिक धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति की योजना की थोड़ी-सी भी भनक अंग्रेज शासकों के कानों में पड़ी हो और उन्होंने यही सोचा हो कि यदि यह संन्यासी सफल मनोरथ हो गया तो उनके निरंकुश शासन की जड़ें ही हिल जायेंगी। फलतः उन्होंने राजाओं पर परोक्ष प्रभाव ड़ालकर स्वामीजी से उनकी भेंट की सम्भावना को ही समाप्त कर दिया हो।''

पण्डित लेखराम संगृहीत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र' में इस सन्दर्भ में लिखा है – ''हमारे देश के राजाओं को स्वार्थी पण्डित किसी सत्यवक्ता की बात नहीं सुनने देते कि कहीं ऐसा न हो कि सोने की चिड़िया उनके जाल से निकल जाये। आर्यावर्त के राजाओं की दुर्दशा का मूल कारण यही है।'' (पृष्ठ 282)

पण्डित लेखराम, प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एवं डॉ० भारतीय के उपर्युक्त मन्तव्य प्रकृत विषय के सन्दर्भ में विचारणीय हैं।

2. मौरवी नरेश महाराजा श्री लखधीरसिंह जी ठाकुर (ठाकोर)

(1876-1957 ई० – शासनकाल : 11.6.1922 - 15.8.1947)

टंकारा शताब्दी महोत्सव के प्रथम दिन (7 फरवरी, 1926 को) सभापति के रूप में दिए गए मौरवी नरेश महाराजा श्री लखधीरसिंह जी ठाकोर के वक्तव्य के महत्त्वपूर्ण अंश –

''पूज्य संन्यासी महात्माओ, स्नेही ठाकुर साहब, श्रीयुत् मनुभा, सुज्ञ विद्वानो, सद्गृहस्थो तथा सन्नारियो !

प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द सरस्वती, कि जिनका जन्म हमारे संस्थान के इस टंकारा ग्राम में हुआ है, उस महापुरुष की जन्म शताब्दी मनाने के लिए आप सब आज यहाँ पर प्रेम, श्रद्धा और

उत्साह के साथ एकत्रित हुए हैं। यह देखकर हमको बहुत आनन्द होता है तथा हम अपने अन्तःकरण से आप सब का स्वागत करते हैं।

गत दिसम्बर मास में हमारे मित्र वीरपुर ठाकुर साहब ने हमें परिचित किया कि आप लोग यहाँ इस सम्मेलन का आयोजन करना चाहते हैं। तब उस महापुरुष की जन्मभूमि के लिए आप सब का अगाध प्रेम देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई। चूँकि जिस महापुरुष की विशाल बुद्धि, अटल धैर्य तथा शुद्ध चारित्र्य ने समस्त भारतभूमि की जनता पर गहरी छाप ड़ालकर जागृति उत्पन्न की है, ऐसे एक महान् पुरुष का जन्म हमारे राज्य में होने से हमें भी यथार्थ रूप में अभिमान है। (करतल ध्वनि)

देश के एक कोने में आए हुए मौरवी तथा टंकारा आज समस्त भारतवर्ष में सुप्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। आज की 'स्वागतकारिणी समिति' के प्रमुख (श्रीमान् मनुभा वर्मा) ने महर्षि के जीवन के कार्य का कुछ ऊहापोह किया है। मुख्यतः उनके जीवन का प्रधान आदर्श ब्रह्मचर्यादि से शारीरिक सम्पत्ति को प्राप्त करना तथा स्वधर्म-प्रेम से आत्म-भाव और सेवा-भाव की प्रेरणा करना दृष्टिगोचर होता है।

मैं प्रभु से अन्तःकरण पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप जिस कार्य के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं वह सफल हो तथा ऐसे नररत्न मेरी प्रजा में अधिकाधिक उत्पन्न होकर मेरे राज्य तथा समस्त देश के लिए लाभदायक हों।"

(सन्दर्भ ग्रन्थ : 'दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 11-12)

• • •

परिशिष्ट : 6

क्या ऋषि दयानन्द ने टंकारा की फेरी की थी ?

स्वामी स्वतन्त्रानन्द, डॉ० कुशलदेव शास्त्री तथा प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' सदृश कई आर्य विद्वानों का मत है कि ऋषि दयानन्द ने 1875 ई० में राजकोट से अपनी जन्मभूमि टंकारा की फेरी की थी।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द का मन्तव्य है कि साधुओं की यह मर्यादा है कि बारह वर्ष के पश्चात् अपने जन्मस्थान को जाना होता है। अतः सम्भव है कि उसी संस्कार वश ऋषि राजकोट से अपनी जन्मभूमि टंकारा हो आए हों।

ऐसा ही मत डॉ० कुशलदेव शास्त्री का है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'महर्षि दयानन्द काल और कृतित्व' में पृष्ठ 328 पर लिखा है – ''मेरे दुर्बल मन को यह भी प्रतीत होता है कि क्षिप्र गति से चलने वाले महर्षि ने यदि किसी ब्राह्ममुहूर्त में अपनी जन्मभूमि के भी दर्शन कर लिए होंगे, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी !''

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने स्वामी स्वतन्त्रानन्द तथा कुशलदेव शास्त्री की उपर्युक्त मान्यता को उद्धृत कर उसके समर्थन में लिखा है – ''हम यह मानते है कि ऋषिवर दौड़ लगाकर (राजकोट से) टंकारा भी फेरी डाल आये। इसमें हमें तो कतई कोई संशय नहीं।'' ('महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र', प्रथम भाग, पृष्ठ 408) पुनः उसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग के 'सम्पादकीय' में पृष्ठ 15 पर प्रा० 'जिज्ञासु' ने लिखा है — ''हमने पहले भाग में साधुओं की परम्परा का ध्यान करके ऋषि का एक बार टंकारा जाना (गुजरात यात्रा के समय) लिखा है। श्री दयाल मुनि ऐसा नहीं मानते। हमारा कोई आग्रह तो नहीं है। इसके

प्रतिवाद के लिए दिये गये प्रमाण तो हमें पता थे ही, तथापि ऋषि ने चुपचाप फेरी डाली होगी, हम यही मानते हैं। आग्रह न तो स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का था और न हमारा।''

ध्यातव्य है कि अपनी राजकोट यात्रा के केवल सात ही मास पश्चात् ऋषि दयानन्द ने पूना में 4 अगस्त, 1875 को दिए गए स्व-जीवन वृत्तान्त विषयक प्रवचन में तथा 'थियोसोफिस्ट' पत्रिका के अक्टूबर 1879 ई० के अंक में प्रकाशित अपने प्रारम्भिक जीवन वृत्तान्त में अपने पूर्वाश्रम के मित्रों तथा सम्बन्धियों से सम्पर्क न करने के एवं अपना, अपने माता-पिता का, इष्ट मित्र तथा निवास स्थानादि के नाम प्रसिद्ध न करने के निम्नलिखित कारण बताएँ थे -

''**गुजरात देश में अन्य देशों की अपेक्षा लोगों में मोह अधिक है। ... उससे मुझे अत्यधिक पीडा होगी और जिस उपाधि (जंजाल) से मैं छूट चुका हूँ वह सब उपाधि मेरे पीछे लग जाएगी। ... जो माता-पिता आदि जीते हों और मेरे पास आवें तो इस सुधार के कार्य में विघ्न हो, क्योंकि मुझको उनकी सेवा करना उनके साथ घूमने में श्रम और धन आदि का व्यय कराना नहीं चाहता।**''

उपर्युक्त कारणों की विद्यमानता में उनकी टंकारा फेरी की बात विश्वसनीय नहीं लगती है।

पूना के उपर्युक्त 4 अगस्त, 1875 को दिए गए प्रवचन में ऋषि ने सिद्धपुर के मेले में पिताजी के द्वारा पकड़े जाने पर वहाँ से पुनः भाग निकलने की (1903 वि०, 1846 ई०) बात का वर्णन कर आगे कहा है कि - ''**अपने गाँव और घर के मनुष्यों से यह अन्तिम भेंट थी। इसके पश्चात् एक बार प्रयाग (इलाहाबाद) में मेरे गाँव के बहुत से लोग मुझको मिले, परन्तु मैंने उनको अपना पता नहीं दिया। तब से आज तक कोई नहीं मिला।**'' इससे यही सिद्ध होता है कि गृहत्याग के पश्चात् ऋषि पुनः टंकारा कभी नहीं गए हैं।

अगर ऋषि गृहत्याग के बाद टंकारा गए होते तो अपने गाँव के किसी-न-

किसी व्यक्ति से तो वे अवश्य मिले होतें। चुपके-चुपके केवल गाँव देखकर तो वापस राजकोट न चले आतें। और अगर वे गाँव में किसी से मिले होतें तो फिर पूना में ऐसा न कहते कि - "**अपने गाँव और घर के मनुष्यों से यह (सिद्धपुर वाली) अन्तिम भेंट थी।**" ऋषि मिथ्या कथन नहीं करते।

अगर उन्होंने टंकारा की फेरी की होती तो राजकोट के उन सज्जनों में से जो उनके आवास, भोजन, प्रवचन आदि का वहाँ प्रबन्ध कर रहे थे, एकाध को तो उसकी भनक पड़ ही जाती। क्योंकि ऋषि जैसा प्रसिद्ध अतिथि महानुभाव की राजकोट में अप्रत्याशित अनुपस्थिति का संज्ञान सम्बद्ध व्यक्तियों में से किसी-न-किसी को तो तत्काल लग ही जाता। मगर ऋषि ने टंकारा की फेरी की थी - ऐसा तो राजकोट या टंकारा के किसी भी प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति ने नहीं बताया है।

दूसरी बात यह कि ऋषि दयानन्द रूढिवादी या परम्परावादी तो बिल्कुल नहीं थे। वे रूढि या परम्परा के केवल उसी अंश में विश्वास करते थे जो युक्तिसंगत, वेदानुकूल या वेद-अविरुद्ध है। फेरी की परम्परा वैदिक तो है नहीं। ऋषि दयानन्द ने स्व-रचित 'संस्कारविधि' के संन्यास प्रकरण में ऐसी फेरी को संन्यासियों की कर्तव्य-सूची में स्थान नहीं दिया है। अगर उनकी दृष्टि में फेरी की वास्तव में कोई उपादेयता होती तो उसका निर्देश उस प्रकरण में वे अवश्य करते।

ऋषि का जन्म अगर किसी बड़े नगर या शहर में हुआ होता तो धर्मप्रचार हेतु वे जैसे देश के कई बड़े नगर एवं शहरों में जाते थे, वैसे अपने जन्म के उस नगर या शहर की यात्रा भी निःसंकोच करते - बिना 'फेरी' की चिन्ता किए।

यह सही है कि ऋषि प्रायः द्रुत गति से चलते थे। मगर वे केवल द्रुत गति से ही नहीं चलते थे। वे विवेकपूर्वक कदम उठानेवाले सुपथगामी भी तो थे। अतः (राजकोट से लगभग 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित) टंकारा की फेरी के लिए जाने के निर्णय को उनके द्रुत गति से चलने के सामर्थ्य से जोड़ कर नहीं देखा जाना चाहिए। ये दो भिन्न विषय हैं।

1926 ई० में आयोजित टंकारा जन्म शताब्दी महोत्सव में ऋषि के बालसखा इब्राहीम ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट कहा था कि - "घर छोड़ देने के बाद मैंने उन्हें (ऋषि दयानन्द को) कभी नहीं देखा। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं उनके फिर भी दर्शन करता। परन्तु उसके बाद वे कभी इस ग्राम में लौटे ही नहीं और मेरी वह ख्वाहिश (इच्छा) अधूरी ही रह गई !" ('दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव', पृष्ठ 23-24) इब्राहीम का यह कथन भी प्रकारान्तर से यही सिद्ध करता है कि ऋषि ने टंकारा की फेरी नहीं की थी।

उपरोक्त तीनों आर्य विद्वानों से भी पहले सम्भवतः देवेन्द्रनाथ ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने ऋषि दयानन्द द्वारा अपनी जन्मभूमि की फेरी डालने की सम्भावना व्यक्त की थी। देवेन्द्रनाथ ने ऋषि दयानन्द की स्व-रचित बँगला जीवनी 'दयानन्द-चरित' के 1897 ई० में प्रकाशित प्रथम संस्करण में ही इस बात का उल्लेख किया था। पण्डित घासीराम ने इस ग्रन्थ को हिन्दी में अनूदित कर मेरठ के भास्कर प्रेस से 1912 ई० में प्रकाशित कराया था। देवेन्द्रनाथ ने इस ग्रन्थ में लिखा है - "अनेक लोग कहते हैं कि उस समय स्वामीजी के हृदय में जन्मभूमि के देखने की इच्छा बलवती हो गई थी और उनकी जन्मभूमि राजकोट से थोड़ी दूर थी।... फलतः सुना जाता है कि वह इस यात्रा में राजकोट से जन्मभूमि की ओर गए थे।" ('दयानन्द-चरित', पृष्ठ 164) ध्यातव्य है उस समय देवेन्द्रनाथ मौरवी को ही ऋषि की जन्मभूमि मानते थे। टंकारा को जन्मभूमि सिद्ध करने का अन्वेषण उन्होंने बाद में किया। इस प्रकार 1897 ई० में ही उन्होंने जन्मभूमि की फेरी डालने की सम्भावना प्रकट की थी। आगे चलकर भी उन्होंने यही फेरी की बात पुनः लिखी। 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' के परिशिष्ट 1 में पृष्ठ 633 पर आपने लिखा है — "टंकारा के कोई-कोई वृद्ध पुरुष यह भी कहते हैं कि जब भगवान् (ऋषि दयानन्द) राजकोट में ठहरे हुए थे तो एक दिन वे टंकारा गुप्त रूप से अपने घर के दर्शन करने गए थे। यह बात कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है, परन्तु संन्यासी परमहंसों में यह प्रथा प्रचलित है कि घर से निकलने और संन्यास ग्रहण करने के कुछ नियत वर्षों के पश्चात् उन्हें एक

बार अपनी जन्मभूमि का दर्शन करना आवश्यक है और यह प्रथा संन्यासियों का एक अवश्यम्पालनीय धर्म समझा जाता है। इसलिए यदि दयानन्द ने भी इसका पालन किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है।"

यहाँ देवेन्द्रनाथ ने 'टंकारा के कोई-कोई वृद्ध पुरुष यह भी कहते हैं' ऐसा तो लिखा, परन्तु उनमें से यह बात कहने वाले किसी एक भी वृद्ध पुरुष का नामोल्लेख नहीं किया। अगर टंकारा के किसी वृद्ध पुरुष ने देवेन्द्रनाथ को इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक जानकारी दी होती, तो आप उस पुरुष का नाम अवश्य लिखते। मगर आपने ऐसा नहीं किया। प्रत्युत स्वयं ने ही इस बात पर संशय प्रकट करते हुए लिखा कि – 'यह बात कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है'। अर्थात् जो बात उन्होंने टंकारा के किसी वृद्ध पुरुषों से सुनी थी उसकी सत्यता के प्रति उन्हें स्वयं को ही संशय था। अगर टंकारा के किसी व्यक्ति ने इस तथाकथित फेरी के सम्बन्ध में देवेन्द्रनाथ को कुछ ठोस बताया होता तो देवेन्द्रनाथ उस व्यक्ति से एतद्-विषयक अतिरिक्त जानकारी भी अवश्य लेते कि टंकारा पहुँच कर ऋषि ने क्या किया, किसे मिले, क्या वार्तालाप किया, कितनी देर रुके, इत्यादि। परन्तु ऐसा तो देवेन्द्रनाथ ने कुछ भी वर्णन नहीं किया।

डॉ० भवानीलाल भारतीय ने देवेन्द्रनाथ की उपरोक्त 'दयानन्द-चरित' में लिखी धारणा पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है कि - "यह (जन्मभूमि की फेरी करने की बात) मात्र किंवदन्ती ही है। स्वामीजी राजकोट से चोटीला तथा वढ़वाण होते हुए अहमदाबाद लौट आए थे।" ('दयानन्द-चरित', पृष्ठ 168, टिप्पणी 12)

अतः जब तब इस तथाकथित फेरी का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता तब तक उसे मान्यता कैसे दी जा सकती है ? प्रमाण-सिद्ध बात को ही मान्य की जा सकती है - आर्यों की यही शैली है।

• • •

परिशिष्ट : 7

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कालीदास महाराज, **राणीमां**, करमसी राघवभगत, नकलंक मन्दिर, राजकोट, द्वितीय आवृत्ति, 1981 ई० (इसकी प्रथम आवृत्ति यही प्रकाशक द्वारा 2013 वि०, 1957 ई० प्रकाशित हुई थी।)

कुशलदेव शास्त्री (डॉक्टर), **महर्षि दयानन्द : काल और कृतित्व**, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, प्रथम संस्करण, 2009 ई०

ज्वलन्तकुमार शास्त्री (डॉक्टर), **महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्म-तिथि**, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, द्वितीय संस्करण, 2009 ई०

जॉर्डन्स जे० टी० एफ० (J.T.F. Jordens), **दयानन्द सरस्वती हिज़ लाइफ़ एन्ड आइडियाज (Dayananda Sarasvati - His Life and Ideas),** ओक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1978 ई०

दयानन्द सरस्वती (स्वामी), **ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन (पूना प्रवचन** अथवा **उपदेश मञ्जरी** समन्वित **)**, सम्पादक : पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक, श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट, वितरक : रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, प्रथम संस्करण, 1988 ई०

आत्मकथा (लिखित), सम्पादक : डॉक्टर भवानीलाल भारतीय , वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, निर्वाण शताब्दी प्रकाशन, 1983 ई०

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन (द्वितीय भाग), सम्पादक : पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, तृतीय संस्करण, 2038 वि०, 1981 ई०

देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, **महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित** (देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर पण्डित घासीराम द्वारा लिखित), सम्पादक: स्वामी जगदीश्वरानन्द, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2050 वि०

स्वामी दयानन्द सरस्वती-नां जन्मस्थानादि-नो निर्णय (1916 ई० में प्रकाशित मूल बँगला पुस्तक का गुजराती अनुवाद), अनुवादक : त्रिभोवनदास दामोदरदास गढ़िया, दामोदरदास प्रिन्टींग हाउस, राजकोट, 1920 ई०

दयानन्द-चरित (1897 ई० में प्रकाशित मूल बँगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद), अनुवादक : पण्डित घासीराम, सम्पादक : भवानीलाल भारतीय (डॉक्टर), विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, संस्करण 2000 ई०

दोलत भट्ट, **धरती-नो धबकार** (गुजराती पुस्तक), माहिती विभाग, गुजरात सरकार, गान्धीनगर, 2000 ई०

भवानीलाल भारतीय (डॉक्टर), **नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती**, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, (द्वितीय संस्करण) 2009 ई०

ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2014 ई०

युधिष्ठिर मीमांसक, **महर्षि दयानन्द सरस्वती का भ्रातृवंश और स्वसृ-वंश**, दिल्ली, 2006 वि०

लक्ष्मण आर्योपदेशक, **महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र** (मूल उर्दू ग्रन्थ मुकम्मल जीवन चरित्र महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का हिन्दी अनुवाद), अनुवादक एवं सम्पादक: प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु', पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मन्दिर, अबोहर, प्रथम संस्करण, प्रथम भाग 2012 ई०, द्वितीय भाग 2013 ई०

लेखराम आर्य मुसाफिर (पण्डित), **महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र** (पण्डित लेखराम द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर पण्डित आत्माराम अमृतसरी द्वारा लिखित मूल उर्दू ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद), अनुवादक : रघुनन्दनसिंह 'निर्मल', सम्पादक : डॉक्टर भवानीलाल भारतीय, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, षष्टम् संस्करण, 2007 ई०

विजयशंकर मूलशंकर, **दयानन्द जन्मस्थान निर्णय तथा टंकारा शताब्दी महोत्सव**, विजयशंकर मूलशंकर, मुम्बई, 1930 ई०

वोटसन् जे० डबल्यु० (Colonel J.W. Watson), **काठियावाड़ सर्वसंग्रह** (1886 ई० में प्रकाशित 'द काठियावाड़ गज़ेटियर' का नर्मदाशंकर दवे 'नर्मद' कृत गुजराती अनुवाद), 1887 ई०

शिवप्रसाद दलपतराम (पण्डित), **भारत-नां स्त्रीरत्नो** (गुजराती पुस्तक), तृतीय ग्रन्थ, सम्पादक एवं प्रकाशक : भिक्षु अखण्डानन्द, सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय की ओर से, अहमदाबाद एवं मुम्बई, द्वितीय आवृत्ति, 1981 वि०

श्रीकृष्ण शर्मा, **महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश परिचय**, राजकोट, प्रथम संस्करण, 2020 वि० (1964 ई०)

सत्यदेव विद्यालंकार, **महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट का इतिहास**, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा

हरबिलास शारदा, **लाइफ़ ऑफ़ दयानन्द सरस्वती (Life of Dayanand Saraswati)**, परोपकारिणी सभा, अजमेर, 1968 ई०

• • •

लेखक-परिचय
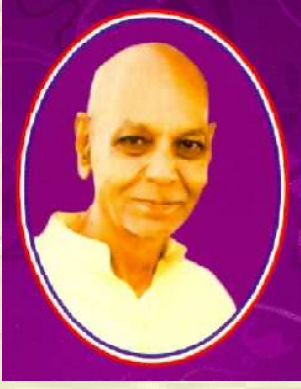
श्री दयाल मुनि आर्य : गुजराती में आर्य साहित्य के प्रणेता तथा अनुवादक श्री दयाल जी भाई परमार का जन्म 28 दिसम्बर 1934 को ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा में श्री मावजीभाई के यहाँ हुआ। इनका प्रारम्भिक शिक्षण साधारण स्तर का ही हुआ, किन्तु बहुत बाद में आपने आयुर्वेद का अध्ययन किया और आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की। आप वर्षों तक जामनगर के आयुर्वेद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक व कायचिकित्सा (मेडिसन) विभाग के अध्यक्ष रहे। आपने महर्षि दयानन्द के पूना-प्रवचन और आत्मकथा का एवं आनन्द स्वामी के कई ग्रन्थों का गुजराती में अनुवाद किया। आपने अत्यन्त पुरुषार्थ कर चारों वेदों के भाष्यों का गुजराती में अनुवाद किया, जिसका प्रकाशन 'वानप्रस्थ साधक आश्रम' (रोजड़) ने किया है। 'महाभारत-थी महर्षि दयानन्द', 'सत्यार्थप्रकाश-नी तेजधाराओ' तथा 'स्वामी दयानन्द' (जीवनचरित्र) आपकी सुप्रसिद्ध गुजराती कृतियाँ हैं। महर्षि दयानन्द के जीवन विषयक अन्वेषण में श्री दयाल जी भाई की विशेष अभिरुचि रही है। आपने महर्षि के टंकारा-त्याग और उसके पश्चात् की घटनाओं पर पूर्वापर विचार कर एक लेखमाला 'आर्यजगत्' तथा 'वेदवाणी' में प्रकाशित की थी, जिसमें श्रीकृष्ण शर्मा, मेधार्थी स्वामी आदि द्वारा स्थापित कतिपय उपपत्तियों का सप्रमाण निराकरण किया गया है। आर्यसमाज के अनेक मूर्धन्य विद्वानों ने इस लेखमाला को अति महत्त्वपूर्ण बताया। आपने आयुर्वेद पर 18 ग्रन्थों का निर्माण किया है, जिन्हें गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय द्वारा सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है। मार्च 2015 में गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय (जामनगर) ने आपको डी० लिट्० (आयुर्वेद) की मानद् पदवी प्रदान कर सम्मानित किया। श्री दयाल जी भाई एक रोचक गुजराती वक्ता भी हैं और उन्होंने कई स्थानों पर ऋषि दयानन्द विषयक व्याख्यान दिए हैं। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित श्री दयाल जी भाई की योग में भी रुचि रही है और कई वर्षों से स्वामी सत्यपति जी के सान्निध्य में रहकर आप योग साधना करते रहे हैं। गत कई वर्षों से आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, फिर भी आप अपने कार्यों में यथासामर्थ्य प्रवृत्त रहते ही हैं। वर्त्तमान में आप टंकारा में वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। **सम्पर्क सूत्र :** श्री दयाल मुनि आर्य, 'प्रणव', लक्ष्मीनारायण सोसाइटी, टंकारा, जि० मौरवी, गुजरात। – सम्पादक